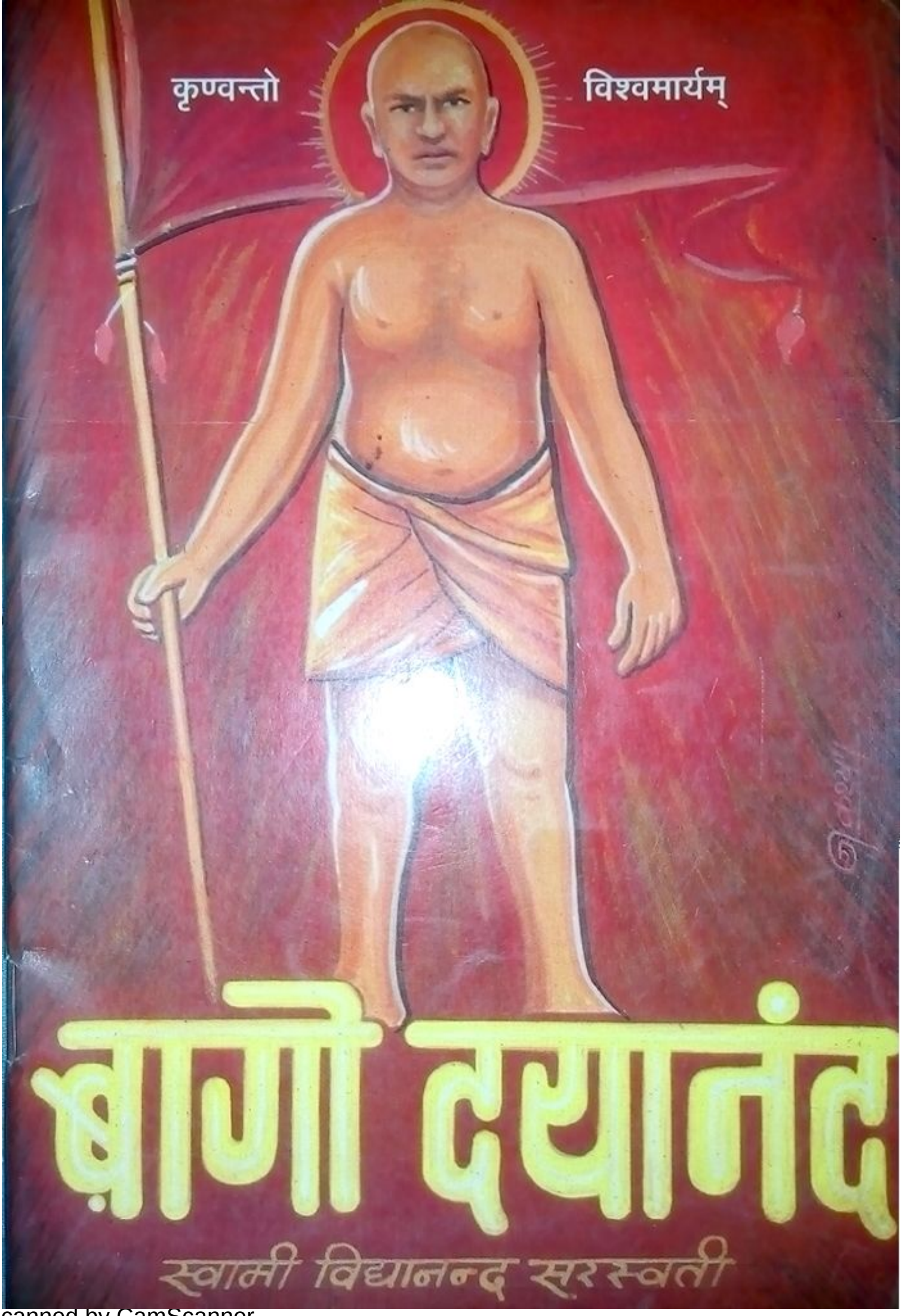

Scanned by CamScanner

प्रकाशक : **श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास**
ब्यानिया पाड़ा, हिण्डौन सिटी, (राज०)-३२२ २३०
दूरभाष : ०७४६९-२३४६२४,
चलभाष : ०-९४१४०-३४०७२

संस्करण : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती एवं प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
अमृत-महोत्सव, सन् २००६

मूल्य : १३.०० रुपये

प्राप्ति-स्थान : **१. टङ्कारा साहित्य सदन**
आर्यसमाज,हिण्डौन सिटी, (राज०)
२. श्री हरिकिशन ओम्प्रकाश
३९९, गली मन्दिरवाली, नया बाँस,
दिल्ली-११०००६, दूरभाष : २३९५८८६४
३. श्रेष्ठ साहित्य सदन, सैंती, चित्तौड़गढ़ (राज०)
शाखा-पहुँना, जिला-चित्तौड़गढ़ (राज०)
दूरभाष : ०१४७१-२२२०६४
४. डॉ० अशोक आर्य, ११६, मित्र विहार,
मण्डी डबवाली, जिला—सिरसा (हरियाणा)
५. श्री गणेशदास-गरिमा गोयल,
२७०४, प्रेम-मणि निवास, नया बाजार, दिल्ली-६
दूरभाष : ०११-५५३७९०७०
६. श्री दयाराम पोद्दार
झारखण्ड राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा,
आर्यसमाज मन्दिर, स्वामी श्रद्धानन्द पथ,
राँची (झारखण्ड)-८३४ ००१
७. श्री राजेन्द्र कुमार
१८, विक्रमादित्य पुरी, स्टेट बैंक कालोनी,
बरेली (उ०प्र०) दूरभाष : ०५८१-२५४३९४४

मुद्रक : **राधा प्रेस,** कैलाशनगर, दिल्ली-११००३१

Scanned by CamScanner

विदेशी राजा
हमारे देश पर
कभी शासन न करे।

— दयानन्द (आर्याभिविनय में)

माता-पिता के समान
कृपा, न्याय और दया
के साथ
भी
विदेशियों का राज्य
पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।

— दयानन्द (सत्यार्थप्रकाश में)

भारत की स्वाधीनता
की नींव रखनेवाला
वास्तव में
स्वामी दयानन्द ही था।

— सरदार वल्लभभाई पटेल

जब स्वाधीन भारत का
मन्दिर बनेगा
तो उसमें
स्वामी दयानन्द की मूर्त्ति
की वेदी सबसे ऊँची होगी।

— डॉक्टर एनी बेसेंट

Scanned by CamScanner

प्रकाशकीय

स्वराष्ट्र, स्वभाषा, स्वभूषा, स्वसंस्कृति, स्वतन्त्रता के प्रबलतम पक्षधर महर्षि दयानन्द सरस्वती ऐसे दिव्य राष्ट्र पुरुष थे जिनका सम्पूर्ण चिन्तन और कार्य जहाँ आध्यात्मिकता से ओतप्रोत था वहीं राष्ट्र उनके लिए प्रथम था। व्यक्ति की सर्वाङ्गीण उन्नति स्व से ही प्रारम्भ होती है। किसी भी क्षेत्र की पराधीनता व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए अधोगति का कारण बनती है। पराधीन व्यक्ति चाहकर भी कुछ नहीं कर पाता है।

यह तथ्य स्पष्ट है कि भारतवर्ष की स्वाधीनता के लिए एकदम साफ और बुलन्द शब्दों में आवाज़ उठानेवाले व्यक्ति महर्षि दयानन्द ही थे और इसके लिए कष्ट और अमानवीयता की सीमा तक यातनाएँ सहनेवाले अधिकांशत: देव दयानन्द के अनुयायी व पथानुगामी ही थे। उस समय के प्राय: सभी युगपुरुष व महापुरुष जहाँ कुछेक क्षेत्रों में कार्य करके अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ रहे थे वहाँ मात्र महर्षि दयानन्द ने सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए कार्य किया।

वर्त्तमान में भी सच्चे अर्थों में महर्षि के अनुयायी राष्ट्र के लिए बिना किसी फलितार्थ की चाहना के कार्य कर रहे हैं। युग ऐसा हो रहा है कि बिना प्रचार के मूल्याङ्कन होता ही नहीं है। इस सबकी ओर कार्य करनेवालों का ध्यान होता ही नहीं। वर्त्तमान में स्वदेशी का नारा एक राजनीतिक मुद्दा-सा बन गया है, लेकिन ऐसे आत्मश्लाघी प्रचारक समय आने पर अपने या समूह के लाभ के लिए रास्ता निकाल लेते हैं और फिर भोले लोग उनके पीछे लग लेते हैं।

महर्षि की इस विचारधारा की प्रासङ्गिकता हर समय रहेगी। इस विचारधारा की आज के उदारीकरण के युग में तो और भी अधिक आवश्यकता है। पूज्य स्वामी विद्यानन्दजी सरस्वती महर्षि के ही अनुयायी हैं जिन्होंने अथक श्रम और कार्य करने के पश्चात् भी सरकारी सुविधाएँ स्वीकार नहीं की। स्वामीजी ने बड़ी विद्वत्तापूर्ण पर सरल भाषा में इस विषय को ग्राह्य बना दिया है।

हम आशा करते हैं कि इस पुस्तक का अधिकतम लोगों में प्रचार किया जावेगा जिससे भावी पतन से बचा जा सके। हम पूज्य स्वामी श्री जगदीश्वरानन्दजी सरस्वती का धन्यवाद करते हैं जिन्होंने पुस्तक को त्रुटिरहित बनाने में अपना स्नेहिल सहयोग प्रदान किया है।

—प्रभाकरदेव आर्य

Scanned by CamScanner

बाग़ी दयानन्द

इङ्गलैण्ड की महारानी एलिज़ाबेथ ने अपने साम्राज्य का विस्तार करने के उद्देश्य से सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में सर टामस रौ को भारत में अपना राजदूत बनाकर भेजा। सर टामस रौ ने तत्कालीन मुग़ल बादशाह जहाँगीर से समुद्र तट पर सूरत के समीप एक कुटिया (कोठी) डालने की अनुमति प्राप्त कर ली। कालान्तर में यही कुटिया भारत में विदेशी राज्य की नींव का पत्थर सिद्ध हुई।

भारत में अंग्रेज़ों ने अपना कारोबार इङ्गलैण्ड में प्रतिष्ठित ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से शुरू किया। यह कम्पनी कोरी व्यावसायिक संस्था न होकर एक व्यापक साम्राज्यवादी योजना के अन्तर्गत एक अत्यन्त सशक्त इकाई थी। इसकी अपनी सेना थी। भारतीय रियासतों के परस्पर सङ्घर्ष का लाभ उठाकर यह सेना क्रमशः देश पर अपना अधिकार करती गई। सन् १८४९ में पञ्जाब पर विजय के साथ उसका अभियान पूरा हो गया और समूचे भारत में यूनियन जैक फहराने लगा।

परन्तु विज्ञान का सिद्धान्त है—"To every action there is an equal and opposite reaction." अर्थात् प्रत्येक क्रिया की उतनी ही ज़ोरदार और विरोधी प्रतिक्रिया होती है। भारतीयों के भीतर विद्रोह की आग सुलगने लगी जो १० मई १८५७ के दिन ज्वाला बनकर भड़क उठी और देश के कोने-कोने में फैल गई। यह आग कुछ ही दिनों में ठण्डी पड़ गई, परन्तु ठण्डी पड़ने पर भी वह बुझी नहीं। यह ठीक है कि भारतीयों का अपना अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ, किन्तु अंग्रेज़ों को भी लोहे के चने चबाने पड़े। परिणामतः ब्रिटिश सरकार को अब कूटनीति का सहारा लेना पड़ा।

ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने एक क़ानून (Government of India Act, 1858) पास करके भारत के शासन-तन्त्र को ईस्ट इण्डिया कम्पनी से लेकर सीधा अपने अधीन कर लिया। १ नवम्बर १८५८ को तत्कालीन वायसराय और गवर्नर जनरल लार्ड केनिङ्ग ने दरबार किया और उसमें महारानी विक्टोरिया का घोषणापत्र पढ़कर सुनाया। उसमें कहा गया था—

"हमारी प्रबल इच्छा है कि अब हम भारत में शान्तिपूर्ण उद्योगों को प्रोत्साहन दें, जनोपयोगी और उन्नति के कार्यों को आगे बढ़ाएँ और अपनी प्रजा के हित की दृष्टि से कार्य करें। उनकी समृद्धि ही हमारी शक्ति होगी,

Scanned by CamScanner

उनकी सन्तुष्टि ही हमारी सुरक्षा होगी और उनकी कृतज्ञता ही हमारा पुरस्कार होगा।

यद्यपि ईसाइयत में हमारा पूर्ण विश्वास है, फिर भी हम अपने विश्वासों को अपनी प्रजा पर थोपना नहीं चाहते। हम अपनी यह शाही इच्छा घोषित करते हैं कि अपनी धार्मिक मान्यताओं के कारण किसी के प्रति किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया जाएगा। इसके विपरीत सबको समानरूप से क़ानून का निष्पक्ष संरक्षण प्राप्त होगा। अपने अधीनस्थ समस्त कर्मचारियों को हम चेतावनी देते हैं कि यदि किसी ने हमारी प्रजा के धार्मिक विश्वासों और पूजा-पद्धति में हस्तक्षेप किया तो उसे हमारे तीव्र कोप का भाजन होना पड़ेगा।''

सत्यार्थप्रकाश से भी पहले सन् १८७४ में ऋषि दयानन्द ने आर्याभिविनय की रचना की थी। उसमें उन्होंने लिखा था—

''अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी शासन न करें। हम कभी पराधीन न हों।''

अंग्रेज़ों के उस दमनकारी राज्य में क्या कोई और नेता इस प्रकार की बात कहने की हिम्मत कर सकता था। विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह की कितनी लपलपाती ज्वाला धधक रही होगी उस व्यक्ति के हृदय में जिसने अपने अनुयायियों के लिए लिखी प्रार्थना-पुस्तक में भी उन्हें प्रतिदिन विदेशी शासन से मुक्त होने की प्रार्थना करने का निर्देश किया था। क्या सन् १९४२ में गांधीजी का 'अंग्रेज़ो, भारत छोड़ो' नारा दयानन्द के उक्त कथन से प्रेरित नहीं था?

अपने कथन की व्याख्या करने तथा विक्टोरिया की घोषणा का तुर्की-ब-तुर्की जवाब देने के लिए अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में ऋषि ने लिखा—

''कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, दया और न्याय के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।''

कितना प्रखर था दयानन्द का तेज और स्वराज्य-प्राप्ति के लिए कितनी प्रबल थी उनकी भावना, यह जानने के लिए यह एक ही उद्धरण पर्याप्त है। सन् १९४४ में सम्पन्न पञ्चम आर्य महासम्मेलन के अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने दयानन्द के इस उद्घोष को उद्धृत करके कहा था—

Scanned by CamScanner

"Could there be a bolder declaration of war against foreign domination?" अर्थात् विदेशी शासन के विरुद्ध क्या इससे अधिक निर्भीक घोषणा हो सकती थी? यह एक मेधावी एवं जुझारू योद्धा की वाणी थी।

यह सब दयानन्द ने इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना से दस वर्ष पूर्व सन् १८७४-७५ में लिखा था। उस समय के अन्य राष्ट्रीय नेता किस प्रकार सोचते थे, उसका पता हमें सन् १८८५ में कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के सभापति श्री व्योमेशचन्द्र बनर्जी के अध्यक्षीय भाषण से लगता है। उन्होंने अपने भाषण का समापन इन शब्दों से किया था—

"ग्रेट ब्रिटेन ने हमें शान्ति और व्यवस्था दी है। उसने हमें रेलवे दी है और सबसे बढ़कर पाश्चात्य शिक्षा का अमूल्य वरदान दिया है। यूरोप में शासन के सम्बन्ध में जो विचार वर्त्तमान में प्रचलित हैं, यदि भारतीय लोग उनके अनुसार अपने देश के शासन के सञ्चालन की इच्छा करें तो यह बात ब्रिटिश सरकार के प्रति उनकी भक्ति की भावना में किसी प्रकार बाधक नहीं होगी।"

इससे स्पष्ट है कि उस समय तक राष्ट्रनेताओं के मन में स्वराज्य अथवा राजनीतिक स्वाधीनता का विचार तक नहीं पैदा हुआ था। इतना ही नहीं, उस युग में कांग्रेस के अधिवेशनों में महारानी विक्टोरिया की जय-जयकार की जाती थी और जब ऋषि दयानन्द "विदेशी राजा हमारे देश में कभी शासन न करें" का उद्घोष कर रहे थे तब कांग्रेस के अधिवेशनों में सम्राट् पञ्चम जार्ज को लक्ष्य करके बड़े उत्साहपूर्वक "Long live the King" का गीत गाया जाता था। उस समय के हमारे नेताओं के लिए यही पर्याप्त था कि ब्रिटिश शासक यह विश्वास कर लें कि भारत में एक ऐसा वर्ग भी है जो उनका वफ़ादार है और समय पड़ने पर उनका सहायक सिद्ध हो सकता है।

ईसाइयत का आक्रमण—सन् १८५७ तक भारत पर अंग्रेज़ों का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से होता था। विदेशी शासक तथा ईसाइयत का चोली-दामन का सम्बन्ध रहा है। हमारी दासता की बेड़ियों को सुदृढ़ करने में ईसाइयों ने अंग्रेज़ों के कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम किया है। अंग्रेज़ों के आक्रमणकारी के रूप में भेजे जाने से पहले ईसाई मिश्नरी भेजे जाते रहे। ईसाई मिश्नरियों द्वारा मैदान तैयार करने के बाद ही सेनाएँ भेजी जाती थीं। सैनिक शक्ति के बल पर शासन जम जाने पर सरकार की ओर से तत्तद् देश के ईसाईकरण में पूरी सहायता की जाती

Scanned by CamScanner

थी। महात्मा गांधी जैसे समन्वयवादी को भी यह स्वीकार करना पड़ा कि ईसाइयों द्वारा किये जा रहे सेवाकार्यों का वास्तविक उद्देश्य असहाय लोगों की विवशता का लाभ उठाकर उन्हें ईसामसीह के रेवड़ की भेड़ें बनाना है। आज भी उनकी वह मनोवृत्ति ज्यों-की-त्यों बनी है। सन् १९७९ में श्री ओम्प्रकाश त्यागी ने संसद् के विचारार्थ एक सर्वथा निर्दोष बिल प्रस्तुत किया जिसका उद्देश्य लोभ, छल, बल प्रयोग आदि के द्वारा धर्म परिवर्त्तन पर रोक लगाना था। संसद् के भङ्ग हो जाने और तत्पश्चात् श्री त्यागी का निधन हो जाने से वह बिल पास नहीं हो सका, परन्तु दया, करुणा एवं वात्सल्य की मूर्त्ति कही जानेवाली मदर टैरिसा ने इसका जमकर विरोध किया था। मदर टैरिसा स्वयं रोमन कैथोलिक हैं। इसलिए वह जन्म से प्रोटेस्टेंट बच्चे को अपने वात्सल्य का पात्र नहीं समझतीं। कुछ वर्ष हुए, मदर टैरिसा सूरत में आर्यसमाज मन्दिर को खरीदने जा पहुँची। यह मन्दिर पहले कभी चर्च था जिसे आर्यसमाज ने खरीदकर आर्यसमाज मन्दिर का रूप दे दिया था। सन् १९१६ में महात्मा गांधी ने इस आर्यसमाज मन्दिर का उद्घाटन किया था। आर्यसमाज के अधिकारियों द्वारा बेचने से इन्कार करने पर यह विश्वशान्ति के लिए नोबल पुरस्कार से पुरस्कृत तथा भारतरत्न की उपाधि से सम्मानित देवी निराश हो "तो मैं तुम्हें देख लूँगी" कहकर चली गई।

ईसाई मत के प्रचार से भारत का उद्धार करने की बात कहने से पहले यह सिद्ध करना आवश्यक था कि भारत के लोग सदा से बर्बर और असभ्य रहे हैं। कारण? यदि उन्हें पहले से सभ्य मान लिया जाता तो वे उन्हें सभ्य बनाने का दावा कैसे कर सकते थे? इस योजना के अन्तर्गत १८९९ में आर्थर ए० मैक्डानल ने संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखा। उस पुस्तक में जो कुछ लिखा उसके निदर्शनार्थ यहाँ कुछ वाक्य उद्धृत किये जाते हैं—

"इतिहासपूर्व काल में जिन आर्यों ने भारत को जीता था वे स्वयं पुराने समय में दूसरों से पराजित होते चले आये थे (पृष्ठ ४०८)। भारत में इतिहास का अस्तित्व ही नहीं। उन्होंने इतिहास लिखा ही नहीं था, क्योंकि उन्होंने कभी कोई ऐतिहासिक (उल्लेखनीय) कार्य किया ही नहीं था (पृष्ठ ४१०-११)। ईरान को भारत क़ीमती-क़ीमती भेंट दिया करता था।"

कलकत्ता के लार्ड बिशप रेजिनल्ड हेबर (Reginald Heber) ने भारतीयों की भावनाओं से खेलते हुए १ मार्च, १८२४ को लिखा—

Scanned by CamScanner

"It is necessary to always remind the Hindus (who form the majority of the population of the country) that we did not conquer them, but we found them conquered and that their previous rulers (referring to the Muslims and the Aryans) were as much strangers to their blood and to their religion as we are, and they were notoriously far more oppressive masters than we have ever shown ourselves."

अर्थात् यह आवश्यक है कि हिन्दुओं को (जो इस देश की आबादी में बहुसंख्यक हैं) सदा याद कराते रहें कि हमने उन्हें नहीं जीता है; वे तो पहले ही जीते जा चुके थे और उनके पहले शासक (मुसलमान और आर्य) हर दृष्टि से उनके लिए वैसे ही विदेशी थे जैसे हम और निश्चय ही वे हमारी अपेक्षा कहीं अधिक क्रूर तथा अत्याचारी थे।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जब इस शताब्दी के दूसरे दशक में पढ़ने के लिए इङ्गलैण्ड में रहे तो वहाँ से उन्होंने अपने सहपाठी रहे संस्कृत के प्रख्यात् विद्वान् पण्डित क्षत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय को बहुत-से पत्र लिखे थे। उनमें से कैम्ब्रिज से १२ फ़र्वरी १९२१ को लिखे एक पत्र का कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं—

"साधारण अंग्रेज़ युवक (एवं वयस्क भी) भारत के सम्बन्ध में न अधिक जानता है और न जानना चाहता है। वह जानता है कि अंग्रेज़ जाति एक महान् जाति है। भारतवासियों को सभ्य बनाने के लिए अपनी हानि करके भी अंग्रेज़ भारत गये हैं। इस धारणा के लिए ज़िम्मेदार हैं हमारे एंग्लो-इण्डियन अफ़सर एवं पादरी लोग। क्रिश्चियन पादरी हमारी संस्कृति के महाशत्रु हैं—यह बात मैंने इस देश में आकर समझी। वे पैसा इकट्ठा करनें के उद्देश्य से पब्लिक को यह समझाने का प्रयास करते हैं कि भारतवासी एक असभ्य जाति है और भील एवं कोल जातियों (जङ्गलों और पहाड़ों में बसी पिछड़ी जातियों) के फ़ोटो मँगवाकर इस देश के लोगों को दिखाकर भ्रमित करते हैं।"

—नवभारत टाइम्स, बम्बई, २२ जनवरी १९९४

इस प्रकार भारत सदा से एक पराभूत होनेवाला देश रहा है—यह सार-संक्षेप है उस इतिहास का जिसे मिथ्या होते हुए भी हमने अपनी मानसिक दासता के कारण स्वीकार किया हुआ है। हीन भावना से ग्रस्त कोई व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र ऊपर उठने की सोच भी नहीं सकता। इसलिए दयानन्द ने सबसे पहले (मानो, मैक्डानल की बातों का प्रत्याख्यान करते हुए) यह लिखा—

"यह आर्यावर्त्त ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में कोई दूसरा

Scanned by CamScanner

देश नहीं है, इसीलिए इस भूमि का नाम 'स्वर्ण-भूमि' है, क्योंकि यही सुवर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। पारसमणि पत्थर सुना जाता है, यह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है जिसको लोहे रूपी दरिद्र-विदेशी छूते ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते थे। सृष्टि के आरम्भ से लेके पाँच सहस्त्र वर्षों से पूर्वपर्यन्त आर्यों का सार्वभौमिक चक्रवर्त्ती अर्थात् भूगोल में एकमात्र राज्य था। अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे।" —सत्यार्थप्रकाश समु० ११

"यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं, वे सब आर्यावर्त्त देश ही से प्रचारित हुए हैं। देखो कि जैकालियट नाम का एक फ्रांसीसी अपनी पुस्तक 'ला बाइबिल दां ला इण्डे' (बाइबल इन इण्डिया) में लिखते हैं कि सब विद्या और भलाइयों का भण्डार आर्यावर्त्त देश है और सब विद्या और मत इसी देश से फैले हैं।" और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि "हे परमेश्वर! जैसी उन्नति आर्यावर्त्त देश की पूर्वकाल में थी वैसी ही हमारे देश की कीजिए।"

"और जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह आर्यावर्त्त देश से मिश्रवालों ने, उनसे यूनानी, उनसे रोम और उनसे यूरोप देश में और उनसे अमरीका आदि देशों में फैली है।"

यह अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बननेवाली बात नहीं है। मैक्समूलर मूलत: भारतहितैषी नहीं थे, परन्तु ऋषिदयानन्द-रचित ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका पढ़ने के बाद मैक्समूलर भारतीय प्रशासनिक सेवा (Indian Civil Service) में नियुक्त युवकों को इङ्गलैण्ड से भेजे जाते समय भारत का परिचय देते हुए कहते थे—

"आप अपने अध्ययन के लिए जो भी भाषा अपनाएँ—भाषा, धर्म, दर्शन, विज्ञान, क़ानून, परम्पराएँ—हर विषय का अध्ययन करने के लिए भारत ही उपयुक्त क्षेत्र है। आपको अच्छा लगे या न लगे, परन्तु वास्तविकता यही है कि मानवता के इतिहास की बहुमूल्य एवं निर्देशक सामग्री भारतभूमि में सञ्चित है, केवल भारतभूमि में।"।

—हम भारत से क्या सीखें

यह सब जानते हुए ही, सन् १९११ की जनसंख्या के अध्यक्ष (Census Commissioner) मिस्टर ब्लण्ट ने आर्यसमाज पर टिप्पणी करते हुए लिखा था—

"The Arya Samaj doctrine has a patriotic side. The Arya doctrine and Arya education alike sing the glories of ancient India and by so doing arouse a feeling of national

Scanned by CamScanner

pride in its disciples, who are made to feel that their country's history is not a tale of humiliation. Patriotism and politics are not synonymous, but the arousing of interest in national interest is the natural result of arousing national pride."

—Census Report of 1911, Vol. XV, Part I, Chap. IV, P. 135.

अर्थात् आर्यसमाज के सिद्धान्तों में देशभक्ति की प्रेरणा है। आर्यसिद्धान्त और आर्यशिक्षा समानरूप से प्राचीन भारत के गीत गाते हैं और ऐसा करके अपने अनुयायियों में राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना को जगाते हैं। इस शिक्षा के फलस्वरूप वे समझते हैं कि उनके देश का इतिहास पराभव की कहानी नहीं है। देशभक्ति और राजनीति पर्यायवाची नहीं है, किन्तु राष्ट्रीय कार्यों में रुचि या प्रवृत्ति राष्ट्रीय भावना का स्वाभाविक परिणाम है।

इससे पहले सन् १९०१ में तत्कालीन जनसंख्या अध्यक्ष मिस्टर बर्न ने लिखा था—

"Dayananda feared Islam and Christianity because he considered that the adoption and adoptation of any foreign creed would endanger the national feelings he wished to foster."

अर्थात् दयानन्द इसलाम और ईसाइयत से इसलिए शङ्कित थे, क्योंकि वे समझते थे कि विदेशी मतों को अपनाने से देशवासियों की राष्ट्रीय भावनाओं को क्षति पहुँचेगी जिन्हें वे पुष्ट करना चाहते थे।

पञ्जाब के गवर्नर लार्ड री ने सन् १८७६ में ईसाई मिशनरियों के एक शिष्टमण्डल को प्रिंस ऑफ़ वेल्स के सामने प्रस्तुत करते हुए कहा था—

"They are doing in India more than all those civilians, soldiers, judges and governors your higness has met."

अर्थात् जितना काम आपके सिपाही, जज, गवर्नर और दूसरे अफसर कर रहे हैं, उससे कहीं अधिक ये पादरी लोग कर रहे हैं।

भारतीय स्वाधीनता के प्रथम युद्ध की समाप्ति के दो वर्ष के बाद इङ्गलैंड के तत्कालीन प्रधानमन्त्री लार्ड पामर्स्टन ने कहा था—

"It is not only our duty but in our own interest to promote the diffusion of christianity as far as possible throughout the length and breadth of India."

—Christianity and Government of India by Mayhew, Page 194.

Scanned by CamScanner

अर्थात् यह हमारा कर्त्तव्य ही नहीं, अपितु हमारे अपने हित में भी है कि भारतभर में उसके एक कोने से दूसरे कोने तक ईसाइयत का अधिक-से-अधिक प्रसार हो।

अंग्रेजी राज्य और ईसाइयत दोनों के हितों को समन्वित करते हुए, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स के तत्कालीन चेयरमैन मिस्टर मेंगल्स ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में कहा था।

"Providence has entrusted the extensive empire of Hindustan to England in order that the banner of Christ should waine triumphant from one and to the other. Every-one must exert all his strength that there should be no dilatoriness on any account in continuing in the country the ground work of making all Indians Christians."

अर्थात् विधाता ने हिन्दुस्तान का विशाल साम्राज्य इङ्गलैंड को इसलिए सौंपा है कि ईसामसीह का झण्डा देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक फहराता रहे। प्रत्येक ईसाई का कर्त्तव्य है कि समस्त भारतीयों को अविलम्ब ईसाई बनाने के महान् कार्य में पूरी शक्ति के साथ जुट जाए।

ऋषि दयानन्द के प्रादुर्भाव से पहले तक मुसलमानों और ईसाइयों को तो धर्म-परिवर्तन की छूट थी, किन्तु हिन्दुओं को धर्मान्तरण करके परावर्तन, अर्थात् अपने घर लौटने की इजाज़त नहीं थी, इसलिए हिन्दुत्व की निन्दा करनेवाले लोग निश्चिन्त थे कि हिन्दू अपना सुधार भले ही करता हो, बदले में हमारी निन्दा करने का साहस उसे नहीं होगा, परन्तु इस मेधावी और योद्धा संन्यासी ने उनकी आशा पर पानी फेर दिया। यही नहीं, जो बात रामम्रोहन राय तथा महादेव गोविन्द रानाडे के ध्यान में नहीं आई थी, उस बात को लेकर दयानन्द और उसके शिष्य आगे बढ़े और उन्होंने घोषणा की कि धर्मच्युत हिन्दू प्रत्येक अवस्था में अपने धर्म में वापस आ सकता है। इतना ही नहीं, अहिन्दू भी, यदि चाहें तो हिन्दू धर्म में प्रवेश पा सकते हैं।

श्रीकृष्ण और ऋषि दयानन्द दोनों के जीवनदर्शन में ज्ञान और कर्म का समन्वय था। श्रीकृष्ण ने घोषणा की—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

—गीता ४।८

सज्जनों की रक्षा, दुष्टों के संहार तथा धर्म की स्थापना के लिए ही समय-समय पर मेरे जैसे महापुरुष जन्म लेते हैं।

Scanned by CamScanner

ऋषि दयानन्द इससे आगे बढ़ जाते हैं और आदेश की भाषा में कहते हैं—

"मनुष्य उसी को कहना जो अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं, किन्तु अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी का नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे। इस मनुष्यरूप धर्म को कभी न छोड़े।"

यह केवल सुधार की वाणी नहीं थी, जाग्रत् देश और जाति का समरनाद था। हिन्दुत्व और भारतीयता का दयानन्द-जैसा निर्भीक तथा रणारुढ़ नेता और कोई नहीं हुआ।

रामधारीसिंह दिनकर के अनुसार "केशवचन्द्र सेन और रानाडे की तुलना में दयानन्द वैसे ही दीखते हैं जैसे गोखले की तुलना में तिलक। जैसे राजनीति के क्षेत्र में हमारी राष्ट्रीयता का सामरिक तेज पहले पहल तिलक में प्रत्यक्ष हुआ, वैसे ही धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में भारत का आत्माभिमान स्वामी दयानन्द में निखरा। ब्राह्म-समाज और प्रार्थनासमाज के नेता अपने धर्म और समाज में सुधार तो ला रहे थे किन्तु उन्हें बराबर यह खेद रहता था कि हम जो कुछ कर रहे हैं, वह विदेश की नक़ल है। अपनी हीनता और विदेशियों की श्रेष्ठता के ज्ञान से उनकी आत्मा कहीं-न-कहीं दबी हुई थी। इस आत्महीनता के भाव के कारण वे दर्प से नहीं बोल सके। यह दर्प स्वामी दयानन्द में चमका।"

स्वामी दयानन्द ने आक्रामकता का सूत्रपात किया, क्योंकि वास्तविक रक्षा का उपाय तो आक्रमण की ही नीति है। जब उनके परम हितैषी और प्रशंसक सर सय्यद अहमद खां ने हिन्दी को 'गवांरु भाषा' कहकर उसका उपहास किया तो स्वामी दयानन्द ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट जैसे दिग्गजों की उपस्थिति में उर्दू को 'वारविलासिनी' (वेश्या) और हिन्दी को 'कुलकामिनी' बताया। आज वही 'गवांरू भाषा' राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित है और उर्दू के चरित्र के सम्बन्ध में तो स्वयं अलताफ़ हुसैन हाली कह गये हैं—

बुतों की मदद से सब शायरी उर्दू की ममलू है।
शकस्त उर्दू जो पायेगी तो मैं समझूँगा बुत टूटा॥

सन् १८५७ में बङ्गाल नेटिव इन्फैंटरी के सिपाहियों का यह सन्देह निराधार नहीं था कि उन्हें ईसाई बनाने के इरादे से पहले छलपूर्वक उनको जातिभ्रष्ट किया जा रहा है। उनके इस षड्यन्त्र की ही एक कड़ी के रूप में गाय और सूअर की चर्बी लगे कारतूसों की कहानी जगज़ाहिर है। पिछले

Scanned by CamScanner

पचास वर्ष की शोध ने अब यह पूरी तरह सिद्ध कर दिया है कि १८५७ के शुरू में ही भारतीय ईसाइयों को ऐसे कारतूस दिये जाने लगे थे जिन्हें बन्दूक की नली में भरने से पहले मुँह से काटना ज़रूरी होता था। इससे अनजाने ही गाय की चर्बी का कुछ अंश उनके मुँह में चला जाता था। यदि डमडम के सैनिक कारख़ाने में, जहाँ ये कारतूस बनते थे, काम करनेवाले किसी निचली जाति के लस्कर ने किसी ब्राह्मण के कान में यह रहस्य न बता दिया होता तो बेचारे सिपाही अनजाने इन कारतूसों का प्रयोग करते रहते और एक दिन अचानक मिश्नरियों द्वारा इस रहस्य का भण्डाफोड़ किये जाने पर उन दिनों की मान्यताओं के अनुसार वे सब एकबारगी जातिभ्रष्ट घोषित कर दिये जाते और तब ईसाई बनने के अलावा उनके पास कोई रास्ता शेष न रह जाता।

यह षड्यन्त्र जानबूझकर रचा गया था। अब ऐसे अनेक दस्तावेज़ प्रकाश में आये हैं जिनसे विदित होता है कि २९ मार्च १८५७ को मङ्गल पाण्डे की खुली बग़ावत से पहले जनवरी मास में ही देसी सिपाहियों ने शक होते ही इनकी निष्पक्ष जाँच कराने और उन्हें वापस लेने की माँग उठाना शुरू कर दिया था। सिपाहियों में बढ़ते हुए इस असन्तोष को भाँपकर कुछ ब्रिटिश सेनाधिकारियों ने उन कारतूसों को वापस लेने की माँग का समर्थन भी किया था, किन्तु इन कारतूसों को वापस न लेकर इस छल पर परदा डालने का यत्न किया गया। १८५७ के विद्रोह के अधिकृत सरकारी इतिहासकार सर जे० डबल्यू केये ने, जो उन दिनों इण्डिया आफ़िस के राजनीतिक तथा गोपनीय विभाग का सचिव होने के नाते इन दस्तावेज़ों से पूरी तरह परिचित था, अपने तीन खण्डों में प्रकाशित तथाकथित शोधग्रन्थ में सफ़ेद झूठ लिख दिया कि इन कारतूसों में किसी प्रकार की ऐसी चरबी का प्रयोग नहीं किया गया था, बल्कि अलसी के तेल और मधुमक्खियों के मोम के मिश्रण का प्रयोग हुआ था।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि इस षड्यन्त्र का शिकार बङ्गाल नेटिव इन्फ़ैंटरी को ही क्यों बनाया गया? इसके समाधान के लिए सेना की तत्कालीन रचना को समझना आवश्यक है। लगभग दो लाख सिपाहियों की यह सेना उस समय की सबसे विशाल और शक्तिशाली एवं अजेय मानी जाती थी। इस सेना में लगभग सभी सिपाही उत्तरप्रदेश के अवध और बिहार के बक्सर या भोजपुरी क्षेत्र के रहनेवाले थे, जिन्हें पुरबिये या हिन्दुस्तानी कहकर पुकारा जाता था। आज शायद इस बात पर विश्वास करना कठिन हो, किन्तु सच यही है कि इस फ़ौज में लगभग

Scanned by CamScanner

४० प्रतिशत सिपाही पुरबिये ब्राह्मण, लगभग २० प्रतिशत राजपूत, लगभग २० प्रतिशत मुसलमान और शेष २० प्रतिशत में शेष सब जातियों और धर्म के लोग थे। उन दिनों देशभक्ति और राष्ट्रीयता की चेतना आज के समान पश्चिमी मुहावरों में स्वयं को अभिव्यक्त नहीं करती थी। तब धर्म चेतना ही बलवती थी और जातिधर्म को ही सर्वोपरि माना जाता था। जाति गई तो धर्म गया, धर्म गया तो देश भी गया और यह जाति-धर्म, खान-पान तथा छुआछूत के कुछ विधि-निषेधों का बन्दी होकर रह गया था। जीविकोपार्जन के लिए विदेशियों की सेना में नौकरी करके और अपने ही देशवासियों पर गोली चलाकर मैं अपने देश को ग़ुलाम बनाये रखने में सहायक हो रहा हूँ, यह विवेक उन दिनों जाग्रत् नहीं था, किन्तु समुद्रयात्रा से जाति नष्ट हो जाएगी, इसलिए समुद्रयात्रा के सैनिक आदेश का उल्लङ्घन करने में उन्हें तनिक भय नहीं लगता था। गाय तो सदा से हिन्दुओं का सर्वोपरि श्रद्धाकेन्द्र रहा है। गाय की चरबी का मुँह से स्पर्शमात्र होने से जातिभ्रष्ट होना अनिवार्य था। बङ्गाल इन्फ़ैंटरी के जातिभ्रष्ट होने का अर्थ था बड़ी संख्या में ऊँची जातियों के ब्राह्मणों और राजपूतों का ईसाइयत की गोद में आना। ऐसी ईसाई सेना भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा और स्थायित्व की गारण्टी तो बन ही सकती थी। तब धर्मान्तरित ब्राह्मणों और राजपूतों के प्रभाव का उपयोग करके सभी भारतवासियों को अल्पकाल में ईसाई बनाना सहज ही सम्भव हो सकता था। पुरबिये सिपाहियों को ईसाई बनाने की दिशा में प्रयास काफ़ी वर्ष पहले सेना में पादरियों की ब्रिगेडियर या कर्नल जैसे पदों पर नियुक्ति करके शुरू किये जा चुके थे, किन्तु अनेक वर्षों तक ईसाईधर्म की श्रेष्ठता और हिन्दूधर्म की निन्दा पर प्रवचन करने के बाद भी उन्हें धर्मान्तरण करने में सफलता नहीं मिल रही थी।

अपने लम्बे अनुभव से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि जब तक इनकी जाति भ्रष्ट नहीं होगी तब तक धर्मान्तरण नहीं होगा। सैनिक कुशलता से अनुशासन के नाम पर गाय की चरबी लगे कारतूसों का सेना में आसानी से प्रवेश किया जा सकेगा और तब सारी सेना को जातिभ्रष्ट करके रातों-रात एक ईसाई सेना खड़ी की जा सकेगी जो ब्रिटिश साम्राज्य और ईसाई मिशनरियों दोनों का समानरूप से हित साधन कर सकेगी, किन्तु २९ मार्च १८५७ को समय से पहले ही मङ्गल पाण्डे की गोली से उद्वेलित सेना ने क्रान्ति का बिगुल बजा दिया और इस प्रकार अकस्मात् षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ हो जाने से वह पूरी तरह धराशायी हो गया।

Scanned by CamScanner

यह सारी जानकारी ब्रिटिश साम्राज्ञी द्वारा मेजर जनरल जोनाथन पोल की अध्यक्षता में नियुक्त आयोग की रिपोर्ट में उपलब्ध है।

मुसलमान इस देश में आक्रमणकारी आतताइयों के रूप में आये और लगभग सात सौ वर्षों तक यहाँ राज्य किया। यह ठीक है कि भारत के मुसलमानों में प्राय: सभी इस देश के रहनेवाले हैं, किन्तु उन्होंने कभी भी इस देश पर शासन नहीं किया। यहाँ शासन करनेवाले—गुलाम (Slave Dynasty), ग़ौर, ख़िलजी, तुग़लक, लोधी, मुग़ल—सभी विदेशी आक्रमणकारी थे, तथापि उनके विदेशी होने के कारण यहाँ के मुसलमानों ने उनका कभी विरोध नहीं किया। इतिहास इस बात का साक्षी है। सच तो यह है कि कट्टर-से-कट्टर देशभक्त भी क़लमा पढ़ते ही देशद्रोही बन जाता है। बड़े-से-बड़े राष्ट्रवादी (?) मुसलमान के हृदय में जो आदर विदेशी आक्रमणकारी महमूद ग़ज़नबी, मुहम्मद ग़ौरी या बाबर के लिए है, वह इस देश की धरती से उत्पन्न राम, कृष्ण, प्रताप और शिवाजी के लिए नहीं है।

सन् १८९५ में इङ्गलैण्ड से लौटने पर अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटी के प्रिंसिपल बैक ने अपने भाषण में कहा था—

"A friendship between the English people and the Muslims was possible, but not between the Muslims and followers of other religions."

अर्थात् अंग्रेज़ों के साथ तो मुसलमानों का मेल हो सकता है, पर अन्य मतावलम्बियों के साथ नहीं।

इस प्रकार की विद्वेषपूर्ण भावना के रहते साम्प्रदायिक सद्भाव तथा देशभक्ति का विचार भी मुसलमानों के हृदय में कैसे पनप सकता था? इस दूषित मनोवृत्ति की अन्तिम परिणति सन् १९४७ में देश के विभाजन के रूप में हुई।

मार्च १९४७ में वायसराय बनकर भारत के लिए रवाना होने से पूर्व लार्ड माउण्टबेटन भारत की स्वतन्त्रता के कट्टर विरोधी चर्चिल से मिलने गये। अंग्रेज़ों के शासनकाल में उनकी सहायता के लिए मुसलमानों का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण कराते हुए चर्चिल ने माउण्टबेटन से कहा—

"I am not going to tell you how to do it. But I tell you one thing—whatever arrangement you make, you must see that don't harm a hair on the head of a single Muslim. They are the people who have been our friends and they are the people Hindus are going to oppress. So you must take steps that they can't do it." -*Indian Express Magazine, April 4, 1982.*

Scanned by CamScanner

मैं यह नहीं बताऊँगा कि तुम्हें यह सब कैसे करना चाहिए, परन्तु मैं तुम्हें एक बात अवश्य कहूँगा कि तुम जो भी व्यवस्था करो, इस बात का ध्यान अवश्य रखना कि किसी एक भी मुसलमान के सिर का बाल बाँका न होने पाये। यही वे लोग हैं जो हमारे मित्र रहे हैं और यही वे लोग हैं जिनका हिन्दू लोग दमन करेंगे। तुम ऐसी व्यवस्था करना जिससे वे ऐसा कुछ न कर सकें।

लार्ड माउण्टबेटन ने वैसा ही किया। आती हुई स्वतन्त्रता को तो वह न रोक सका, परन्तु भारत का बँटवारा उसने इस प्रकार किया कि मुसलमानों को भारत का एक भाग (पाकिस्तान+बङ्गलादेश) काटकर पाकिस्तान के रूप में एक पृथक् स्वतन्त्र देश के रूप में मिल गया और शेष भारत पर उनका अधिकार ज्यों-का-त्यों बना रहा। भारतीय नेता चाहते थे कि बँटवारे की अवस्था में लाहौर भारत के हिस्से में आये, परन्तु माउण्टबेटन ने नहीं माना। यदि वैसा हो जाता तो दोनों देशों के बीच में रावी जैसी एक बड़ी नदी आ जाती। तब खेतों-से-खेत मिले रहने के कारण हर समय होती रहनेवाली पाकिस्तानियों की घुसपैठ पर रोक लग जाती, क्योंकि पाकिस्तान की सृष्टि ही मुसलमानों की मतान्धता के कारण साम्प्रदायिक आधार पर हुई थी, इसलिए भारत में ही नहीं, भारत-पाक सीमाओं पर भी हिन्दू-मुसलिम समस्या और दो देशों के परस्पर वैमनस्य के कारण सङ्घर्ष की स्थिति निरन्तर बनी रहती है। मुसलमानों को अल्पसंख्यकों के नाम पर मिलनेवाली अतिरिक्त सुविधाओं के कारण हिन्दू अपने-आपको हीन भावना से ग्रस्त अनुभव करने लगा है। कुल मिलाकर देश की स्थिति आज १९४७ से पूर्व की अपेक्षा कहीं अधिक भयावह है।

सन् १९४७ में मुसलमानों ने अपनी २५ प्रतिशत आबादी के बल पर पाकिस्तान प्राप्त कर लिया था। वह दिन दूर नहीं है जब ईसाई लोग भारत के पूर्वाञ्चल में अपनी ७५ प्रतिशत आबादी के बल पर ईसाइस्तान की माँग के लिए लड़ने लगेंगे। सन् १९९०-९१ में जब मिज़ोरम में चुनाव हुए थे वहाँ के बहुसंख्यक ईसाइयों ने काँग्रेस को इसलिए वोट दिये थे कि तत्कालीन प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने उन्हें आश्वासन दिया था कि यदि वहाँ काँग्रेस बहुमत में आयेगी तो काँग्रेस की सरकार बनने पर वहाँ शासन बाइबल के अनुसार होगा। जाननेवाले जानते हैं कि आज मिज़ोरम की स्थिति बहुत कुछ वैसी ही है, जैसी कश्मीर की।

भारत और पाकिस्तान के रूप में देश का बटवारा हो जाने पर

Scanned by CamScanner

पाकिस्तान ने स्वदेशोत्पन्न मुहम्मद अली जिन्नाह को अपना गवर्नर जनरल बनाया, जबकि भारत ने अपने को दो सौ वर्ष तक ग़ुलाम बनाये रखनेवाले इङ्गलैण्ड में उत्पन्न लार्ड माउण्टबेटन को ही अपना गवर्नर जनरल बनाये रखने में अपना कल्याण समझा।

दिल्ली में लगभग तीन सौ आर्यसमाजें हैं। उन सबको एक सूत्र में बाँधकर सन् १९४४ में मैंने आर्य केन्द्रीय सभा की स्थापना की थी। तब से ऋषि दयानन्द निर्वाणोत्सव प्रतिवर्ष इसी सभा के तत्त्वावधान में दिल्ली की समस्त आर्यसमाजों की ओर से सम्मिलित रूप में रामलीला मैदान में मनाया जाता है। स्वतन्त्र भारत में ऋषि निर्वाणोत्सव पहली बार सन् १९४९ में मनाया गया। इस अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में मैंने स्वतन्त्र देश के सबसे पहले भारतीय राष्ट्राध्यक्ष चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य को आमन्त्रित किया। इस समारोह की अध्यक्षता केन्द्रीय मन्त्री श्री नरहरि विष्णु गाडगिल ने की। गाडगिलजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि "यदि यह देश ऋषि दयानन्द के मार्ग पर चला होता तो कश्मीर पाकिस्तान में न जाता।" श्री गाडगिल के इस वक्तव्य को मुसलिम अख़बारों ने प्रमुखता से उछाला। जमैयत उल्मा-ए-हिन्द के अख़बार अल जमीयत ने मोटे अक्षरों में इसे मुखपृष्ठ पर दिया। इसकी एक प्रति लेकर मौलाना अबुल कलाम आज़ाद प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू के पास पहुँचे और शिकायत की कि आपका मन्त्री शुद्धि का प्रचार करता है।

अगले साल (सन् १९५०) मुख्य वक्ता के रूप में सरदार बल्लभभाई पटेल पधारे और उन्होंने अपने भाषण में कहा कि "यदि हमने ऋषि दयानन्द की बात मानी होती तो आज कश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्र सङ्घ में लटका हुआ न होता।" इसके कुछ ही दिन बाद बम्बई में सरदार पटेल का निधन हो गया। इसलिए उनके इस कथन के अभिप्राय को उनसे मिलकर पूरी तरह न जाना जा सका, किन्तु कालान्तर में इण्डियन एक्सप्रेस नई दिल्ली के ७ जून १९९० के अङ्क में प्रकाशित एक वक्तव्य से पूरी तरह स्पष्ट हो गया। उसमें लिखा था—

"देश के स्वतन्त्र हो जाने पर यहाँ रहे ब्रिटिश सैनिक अधिकारियों ने भारत सरकार को कश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्रसङ्घ को सौंपने की सलाह दी थी। इससे पाकिस्तान को कश्मीर के मामले को अन्तर्राष्ट्रीय मञ्च पर उठाने का अवसर मिला। इसी के परिणामस्वरूप भारत को पाकिस्तान के तीन आक्रमणों का सामना करना पड़ा। कश्मीर की वर्त्तमान स्थिति स्वतन्त्र भारत में विदेशी सेनाधिकारियों को बनाए रखने का

Scanned by CamScanner

परिणाम है।'' यह रहस्योद्घाटन मेजर जनरल राजेन्द्रनाथ (सेवानिवृत्त) ने अपनी पुस्तक "Military Leadership in India From Vedic Period to Indo-Pak War" में किया है।

''इन ब्रिटिश सेनाधिकारियों ने कश्मीर का विधिवत् विलय हो जाने पर भी बने-बनाये काम को बिगाड़ने का भरसक यत्न किया। सन् १९४७ में पहली बार हुए पाकिस्तानी आक्रमण में इन अफ़सरों ने परदे के पीछे से पाकिस्तान का साथ दिया।''

पुस्तक में आगे लिखा है—''२७ नवम्बर १९४७ तक भारत में रहे प्रधान सेनापति जनरल लॉकहार्ट (Lockhart) और उसके बाद जनरल बुशेर (Boucher) पाकिस्तान के सेनाध्यक्षों को भारत-पाक युद्ध के दिनों में नियमित रूप से परामर्श देते रहे—दोनों का बराबर सम्पर्क बना रहा। वस्तुत: उन्होंने ही पठान कबायलियों और पाकिस्तान की नियमित सेनाओं के द्वारा सम्मिलित रूप में जम्मू-कश्मीर पर क़ब्ज़ा करने की योजना बनाई थी। सरदार पटेल और भारतीय सेनाधिकारियों के विरोध के बावजूद लार्ड माउण्टबेटन ने भारतीय सेनाधिकारियों को प्रशिक्षित करने के बहाने ब्रिटिश कमाण्डरों को रोक लिया था। लार्ड माउण्टबेटन की सहानुभूति पाकिस्तान के साथ थी। इतना ही नहीं, लार्ड माउण्टबेटन ने जनरल राजेन्द्रनाथ से स्वयं कहा था—'I must honestly tell you that I myself wanted Kashmir to join Pakistan.' अर्थात् मैं स्वयं कश्मीर के पाकिस्तान में विलय के पक्ष में था।''

सरदार पटेल के अनुसार यह सब ऋषि दयानन्द की बात न मानने के कारण हुआ। सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में उन्होंने लिखा है—''मन्त्री स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न होने चाहिएँ—वे जिनकी जड़ें अपने देश की मिट्टी में हों—जो विदेश से आयातित (Imported) न हों और जिनकी आस्था अपने धर्म, संस्कृति, सभ्यता तथा परम्पराओं में हो।[१] जनरल

---

१. सन् १९४७ में हमारा देश भारत और पाकिस्तान के नाम से दो पृथक् स्वतन्त्र देशों में विभक्त हो गया। संयुक्त भारत के गवर्नर जनरल लार्ड माउण्टबेटन थे। विभाजन हो जाने पर पाकिस्तान ने स्वामी दयानन्द की मान्यता के अनुसार अपना गवर्नर जनरल स्वदेशोत्पन्न मुहम्मद अली जिन्ना को बनाया, परन्तु भारत ने लार्ड माउण्टबेटन के रूप में, इस देश को सैकड़ों वर्षों तक अपने अधीन ग़ुलाम बनाये रखकर उसपर अत्याचार करनेवाले और जाते-जाते उसके टुकड़े कर जानेवाले तथा इतने विशाल साम्राज्य के छिन जाने से त्रस्त, इङ्गलैण्ड में उत्पन्न लार्ड माउण्टबेटन को ही अपना गवर्नर

Scanned by CamScanner

राजेन्द्रनाथ के अनुसार ऋषि के उक्त लेख की अवहेलना के कारण ही हमने इतनी हानि उठाई है और उठाते रहेंगे। विदेशी प्रशासक कुशल तो हो सकता है, पर हितैषी नहीं। अवसर मिलते ही काटने से नहीं चूकेगा।

महाभारत युद्ध में विदेशी हाथ

राजसूययज्ञ में युधिष्ठिर के ऐश्वर्य को समग्रता में देखकर दुर्योधन चकित व लज्जित हो ईर्ष्याग्नि में जलने-भुनने लगा। उसकी इस अवस्था को देखकर शकुनि बोला—"दुर्योधन! यह सारी सम्पत्ति मैं तेरे वश में कर दूँगा।" दुर्योधन ने पूछा—"कैसे? अब पाण्डवों को कौन जीत सकता है?" शकुनि ने बताया—"मैं जुआ खेलने में निष्णात हूँ। युधिष्ठिर सरल स्वभाव है, उसे बहकाना कौन-सी बड़ी बात है?" शकुनि से प्रेरित दुर्योधन पिता व राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा प्राप्त करने गया। राजा ने कहा—"मैं अपने मन्त्री महात्मा विदुर से पूछकर बताऊँगा, वे बृहस्पति के समान नीति के पण्डित हैं।" दुर्योधन जानता था कि विदुरजी आज्ञा नहीं देंगे, इसलिए उसने पुत्रमोह में ग्रस्त धृतराष्ट्र से खीजते हुए कहा—"विदुर तो इसकी आज्ञा देंगे नहीं और मेरा इसके बिना जीना कठिन है, अत: मेरे मरने पर आप विदुरजी से राज्य करवाना।" धृतराष्ट्र ने द्यूत को स्वयं वेद-विरुद्ध मानते हुए भी सम्मति के लिए महात्मा विदुर को बुला भेजा। विदुर ने इसका घोर विरोध करते हुए कहा—"राजन्! यह द्यूत भाई-भाई में विरोध डाल देगा। श्रुति-स्मृति आदि में सर्वत्र इसकी निन्दा की गई है। हंसी के रूप में भी इसका खेलना निषिद्ध है। राजाओं के लिए तो यह विनाशकारी व्यसन है।"

जनरल बनाये रक्खा।

आज़ादी के बाद विदेशी ईसाई पादरियों ने अपना बोरिया बिस्तरा बाँधने का निश्चय कर लिया था, परन्तु पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। पण्डित नेहरू का तर्क था कि भारत एक सेक्यूलर देश है। इसलिए यहाँ रहते हुए उन्हें धर्मप्रचार के कार्य में कोई बाधा नहीं होगी। इससे मिशनरियों का साहस बढ़ गया और वे पहले से बढ़-चढ़कर अपना काम करने लगे। परिणामत: जनजाति बहुल सात राज्यों में से चार—मिज़ोरम, नागालैण्ड, मेघालय तथा अरुणाचल—ईसाईबहुल (७० से १०० प्रतिशत) हो गये हैं। सरकार और प्रशासन की कमज़ोरियों तथा जनता की अत्यधिक ग़रीबी के कारण ये राज्य अराष्ट्रीय गतिविधियों के केन्द्र बन गये हैं। वे कभी भी पाकिस्तान की तरह पृथक् स्वतन्त्र देश की माँग कर सकते हैं।

Scanned by CamScanner

धृतराष्ट्र ने विदुरजी से सहमत होते हुए भी दैवहत पुरुष के समान कह दिया—''दुर्योधन का हठ निबाहने के लिए, थोड़ा-सा खेल होने दो। बीच में आप, हम, भीष्म और द्रोण आदि भी तो होंगे। सबके बैठे अनर्थ कैसे होगा? ऐसा सुनकर भी विदुरजी ने कहा—''जैसी आपकी आज्ञा। पर द्यूत शास्त्रविरुद्ध, कलहकारी, भेद डालनेवाला निन्दनीय पाप है।''

सभा में पहुँचकर द्यूत का नाम सुनते ही युधिष्ठिर बोले—''महात्मन्! द्यूत में सदा क्लेश होता है। कोई भी समझदार व्यक्ति इसे पसन्द नहीं करता। आप ही कहें, क्या यह अच्छा काम है। हम सब आपकी आज्ञा में विद्यमान हैं।''

उत्तर में विदुरजी ने इतना ही कहा—''धर्मराज! मुझे बलात भेजा गया है, उनका सन्देश मैंने सुना दिया है। आप शास्त्रवित् हैं, जो उचित समझें, करें।''

शकुनि से सामने होने पर युधिष्ठिर बोले—''राजन्! किसी को ठगना वा जुआ खेलना पाप है। इसमें कोई क्षत्रियोचित बल का परिचय तो नहीं होता, यह कोई धर्मनीति नहीं है, आप इसे क्यों पसन्द करते हैं?'' शकुनि बोला—''धर्मराज! इसमें ठगी और पाप क्या है? जैसे द्वन्द्व में शरीर बल का परीक्षण होता है और शस्त्रास्त्र संग्राम में धनुर्वेद का परीक्षण होता है, वैसे ही जुए में बुद्धि का परीक्षण होता है।''

युधिष्ठिर बोले—''शकुनिजी! इस मायाचार को हम आर्यावर्त्तीय लोग पसन्द नहीं करते और न ही इसके दाव, घात व टेढ़ेपन को हम सरल-स्वभाव आर्य जानते हैं। हम तो युद्ध जानते हैं जिसमें न छल, न कपट। दो हाथ किये और मैदान साफ़।''

शकुनि ने उत्तर दिया—''धर्मराज! इसमें टेढ़ापन कौन-सा है? गिने हुए घर, गिनी हुई नरदें, स्पष्ट दीखनेवाले और सबके सामने फेंके जानेवाले पासे। क्षत्रिय को युद्ध प्रिय सबने कहा है। युद्ध कई प्रकार के होते हैं—शस्त्रयुद्ध, गदायुद्ध, मल्लयुद्ध, धनुष—बाणयुद्ध। यहाँ जुए में भी पासे, बाण और दाव को धनुष समझो। यह अक्षयुद्ध है। हाँ, यदि निर्बलता आदि दोषों के कारण तुम अपने को असमर्थ समझते हो तो साफ़ तौर पर, मैदान छोड़कर, कायर पुरुषों की भाँति घर चले जाओ, कायरों को वीर जीता ही करते हैं, कायर मैदान से टलते ही हैं, तुम भी पीछे हट जाओ।''

शकुनि के इन वचनों से युधिष्ठिर के अहम् को ठेस लगी, मायावी शकुनि के वाग्जाल को वे न समझ सके और झट बोल उठे—''यदि तुम मुझे युद्ध का निमन्त्रण देते हो तो मैं सब प्रकार से युद्ध के लिए तैयार

Scanned by CamScanner

हूँ, क्योंकि ललकारने पर मैं पीछे नहीं हट सकता।'' और इस प्रकार एक अत्यधिक विनाशकारी युद्ध में देश का सर्वनाश होकर रह गया।

शकुनि गान्धार देश का राजा होने से विदेशी था। उसे अपने पड़ौसी देश भारत का उत्कर्ष कैसे सहन हो सकता था? भाई-भाई को आपस में लड़ाके उसने अपना हित साधने का प्रयास किया। उसने भले ही कुछ न पाया, पर भारत अपना सब-कुछ गँवा बैठा। उसकी भरपाई आज तक न हो सकी। यह एक विदेशी को बीच में डालने का परिणाम था। इसी को लक्ष्य करके दयानन्द ने लिखा था—''जब भाई-भाई आपस में लड़ते हैं तो तीसरा पञ्च बन बैठता है।''

जो इस देश को अपना नहीं मानता उससे इस देश की उन्नति में प्रवृत्त होने की आशा कैसे की जा सकती है? इसमें सन्देह नहीं कि भारत के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी सबसे बड़ी देन वह तेजस्वी नारा था जिसने इस आन्दोलन में जान फूँक दी थी। वह नारा था—''स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।'' परन्तु लोकमान्य तिलक को यह कहने का अधिकार नहीं था, क्योंकि उनकी अपनी मान्यता के अनुसार आर्य लोग (वर्त्तमान में हिन्दू नाम से अभिहित इस देश की ८० प्रतिशत आबादी) इस देश के मूल निवासी नहीं हैं। वे विदेशी आक्रमणकारी हैं जिन्होंने उत्तरी ध्रुव से आकर अपनी सैनिक शक्ति के बल पर इस देश पर अधिकार किया और यहाँ के आदिवासियों को खदेड़कर पहाड़ों और जङ्गलों में शरण लेने को विवश किया। उनके घर-द्वार पर ही नहीं, उनकी स्त्रियों तक पर अधिकार कर लिया और जिन्होंने घुटने टेक दिये, उन्हें शूद्र नाम देकर निकृष्ट कार्य करने को मजबूर किया। क्या इस प्रकार पराये घर पर बलात् अधिकार जमानेवाले लोगों की यह अधिकार है कि वह उसपर अपना जन्मसिद्ध अधिकार जताएँ? लोकमान्य ने अपने इस मत का उल्लेख स्वरचित ग्रन्थ 'Arctic Home in the Vedas' में किया था और उसे वेदों पर आधारित बताया था, परन्तु जब बङ्गाल के सुप्रसिद्ध विद्वान् और 'मानवेर आदि जन्मभूमि' के लेखक बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न ने पूना जाकर उनसे पूछा कि वेदों में यह सब कहाँ लिखा है तो उन्होंने सहजभाव से उत्तर दिया—''आमि मूल वेद अध्ययन करि नाई, आमि साहब अनुवाद पाठ करिया छे'' अर्थात् मैंने मूल वेद नहीं पढ़े, मैंने तो साहब लोगों (अंग्रेज़ों) का किया अनुवादमात्र पढ़ा है।''

—मानवेर आदि जन्मभूमि पृष्ठ १२४

Scanned by CamScanner

'फूट डालो और राज्य करो' (Divide and rule) के सिद्धान्त के अनुसार भारतीयों को भ्रमित करने के उद्देश्य से आर्य-द्रविड़ जातियों के सिद्धान्त की कल्पना लण्डन की रायल एशियाटिक सोसायटी के बन्द कमरे में ९ अप्रैल १८६६ की सभा में की गई थी। ए.ए.सो. जर्नल (नई मालिका ५, पृष्ठ ४२० की टिप्पणी) के अनुसार यह सभा राइट ऑनरेबल वाइकाउंट स्ट्राङ्गफील्ड (Viscount Strongfield) की अध्यक्षता में हुई थी। मिस्टर एडवर्ड टामस ने चौथे शीर्षक के अन्तर्गत चर्चा का आरम्भ करते हुए कहा कि "आक्सस नदी से आर्यन आक्रामकों की लहरें आरमीनिया प्रान्त और हिन्दुकुश के मार्ग से भारत में प्रविष्ट हुईं।" तदनुसार भारत में प्राइमरी से लेकर यूनिवर्सिटी स्तर तक की पुस्तकों में यह पढ़ाया जाने लगा कि आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया और यहाँ के मूल (आदि) निवासियों को परास्त कर बलात् अधिकार करके इस देश के स्वामी बन बैठे। इस प्रकार इस देश के मूल निवासी आर्य आक्रामक के रूप में द्वितीय श्रेणी के नागरिक कहलाने लगे। हम अपने ही घर में पराये (विदेशी) बन गये। इसी आधार पर आज यह माँग की जाने लगी है कि अन्य विदेशियों (अंग्रेज़ों तथा मुसलमानों) की भाँति आर्यों (हिन्दुओं) को भी, इस देश को आदिवासियों को सौंपकर, जहाँ से आये थे वहाँ लौट जाना होगा। यदि दो सौ वर्ष पूर्व आनेवाले अंग्रेज़ विदेशी थे तो तीन हज़ार वर्ष पूर्व आनेवाले आर्य विदेशी क्यों नहीं?

मुसलमानों और ईसाइयों की ओर से यह कहा जा रहा है कि उनमें अधिसंख्य यहाँ की छोटी जातियों—अनुसूचित जातियों, जनजातियों, गिरिजनों आदि में से हैं, क्योंकि यही लोग भारत के मूल निवासी हैं, इसलिए हिन्दू से मुसलमान व ईसाई बने लोग ही इस देश के मालिक हैं, अन्य सब विदेशी हैं। अंग्रेज़ चले गये, पर भारत पर सबसे पहले आक्रमण करके यहाँ बसे विदेशी आर्य नहीं गये। जो सबसे पहले आये थे, उन्हें सबसे पहले जाना चाहिए था।

आर्यों के विदेशी होने की मान्यता का फलितार्थ विभिन्न रूपों में हमारे सामने आ रहा है। ४ सितम्बर १९७७ को संसद् में राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सदस्य फ्रैंक एन्थोनी ने कहा—

"Sanskrit should be deleted from the 8th schedule of the constitution, because it is a foreign language brought to this country by foreign invaders, the Aryans."

—Indian Express, Sept. 9, 1977

अर्थात् विदेशी आर्यों द्वारा भारत में लाई गई संस्कृत विदेशी भाषा

Scanned by CamScanner

होने के कारण उसे संविधान के आठवें परिशिष्ट में परिगणित भारतीय भाषाओं की सूची में से निकाल देना चाहिए। सन् १९७८ के आरम्भ में भारत ने अपना पहला उपग्रह अन्तरिक्ष में छोड़ा था। उसका नाम भारत के प्राचीन वैज्ञानिक आर्यभट्ट के नाम पर रक्खा गया था। २३ फ़र्वरी १९७८ को द्रमुक (द्रविड़ सुन्नेत्र कषगम) के प्रतिनिधि लक्ष्मणन ने इस नाम पर आपत्ति करते हुए राज्यसभा में माँग की थी कि 'आर्यभट्ट' नाम के विदेशी होने के कारण उसके स्थान पर कोई भारतीय नाम रक्खा जाना चाहिए। कई वर्ष पूर्व तमिलनाडू के सलेम नामक नगर में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आर्य-सन्तान होने के कारण उनकी मूर्त्ति के गले में जूतों की माला डालकर झाड़ुओ से मारते हुए जलूस निकाला गया था। इस सबके मूल में आर्यों के विदेशी होने की भ्रान्त धारणा है।

वस्तुत: स्वतन्त्रता आन्दोलन का आधार यही है कि यह देश सदा से हमारा है, इसीलिए इसपर शासन करने का अधिकार इसके मूल निवासी आर्यों का ही है।

आर्यों का आदि देश—ऋषि क्रान्तदर्शी होता है। ऋषि दयानन्द पहला व्यक्ति था जिसने पाश्चात्यों की इस विनाशकारी कूटनीतिक चाल को समझा और इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई। उन्होंने घोषणा की—

''किसी संस्कृत ग्रन्थ में या इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहाँ के जङ्गलियों से लड़कर, जय पाके, उन्हें निकालके इस देश के राजा हुए। पुन: विदेशियों का लेख कैसे माननीय हो सकता है? आर्य लोग सृष्टि के आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सीधे इसी देश में आकर बसे थे। इससे पूर्व इस देश का कोई नाम भी नहीं था और न आर्यों से पहले इस देश में कोई बसते थे।''

इस विषय का विस्तृत विवेचन हमारे ग्रन्थ 'आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता' में उपलब्ध है।

आर्यों ने ही इस देश को बसाया और 'आर्यावर्त्त' नाम दिया। इस प्रकार दयानन्द ने ही हमें इस देश को अपना देश कहने और उसपर राज्य करने का अपना जन्मसिद्ध अधिकार जताने का अधिकार प्रदान किया। इसलिए सरदार पटेल का यह कहना सर्वथा युक्तिसङ्गत है कि देश के स्वाधीनता आन्दोलन की नींव वास्तव में स्वामी दयानन्द ने ही रक्खी थी।

—सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास

इससे लगभग एक वर्ष पूर्व ऋषि दयानन्द 'आर्याभिविनय' में लिख चुके थे—

"अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न रहें।" —आर्याभिविनय, भाग २, मन्त्र ३१

इस प्रकार ऋषि दयानन्दकृत 'आर्याभिविनय' तथा 'सत्यार्थ-प्रकाश' ही स्वराज्य के मन्त्रदाता (यतेमहि स्वराज्ये—ऋग्वेद) अर्थात् आदि प्रेरक ठहरते हैं। दयानन्द के अतिरिक्त अन्य कोई इसमें भागीदार नहीं है।

मानवेर आदि जन्मभूमि—ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में तिब्बत (त्रिविष्टप) में मनुष्यों की आदि सृष्टि होना माना है। इस विषय में वहाँ उन्होंने कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। निश्चय ही यह उनकी आर्षबुद्धि का चमत्कार है।

सत्यार्थप्रकाश में सन् १८७५ में उपलब्ध उनके मन्तव्य की पुष्टि वैज्ञानिकों ने एक सौ बीस वर्ष बाद की है। इसका विवरण बड़ौदा से प्रकाशित इण्डियन एक्सप्रेस के १६ जनवरी १९९५ के अङ्क में दिया है। उसका महत्त्वपूर्ण अंश हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं—

"Human Life Originated in Tibet, says theory.

Beiging—Scientists have propounded a new theory that human life may have formed in Tibet after the planet's greatest intercontinental collision.

They have come out with a hypothesis that all human life is formed out of the uplift of the Tibetan plateau when the Indian sub-continent crashed into Asia many million years ago. The hypothesis has been propounded by a team of international geologists who went public last week in a BBC documentary, shedding new light on climate shifts and solar radiation.

Based on their findings, an article in Hong-Kong based on South Chiana Morning Post said the scientists believe India was dragged towards Asia in the age of the dinosaurs."

ऋषि दयानन्द ने विदेश और विधर्म दोनों के हमले से बचाने के लिए देश को सावधान किया था। वर्त्तमान में बड़े ज़ोर से आवाज़ उठ रही है कि लगभग एक अरब की आबादी वाले भारत में एक भी व्यक्ति इस योग्य नहीं है जो इस देश पर शासन कर सके। विदेश से आयातित (Imported) प्रधानमन्त्री के बिना देश नहीं चल सकेगा, इसलिए देश की बागडोर इटली में जन्मी-पली सोनिया गांधी और उसके परिवार को सौंप देनी चाहिए। सोनिया गांधी विदेशोत्पन्न तो है ही, धार्मिक दृष्टि से

Scanned by CamScanner

भी वह ऐसे धर्म को मानती है जो विदेशोत्पन्न है। उसकी जड़ें इटली और इटली में भी ख़ास रोम में है।

हमने २७ सितम्बर १९९४ को श्रीमती सोनिया गांधी के नाम एक रजिस्टर्ड ए०डी० पत्र लिखकर पूछा कि हमें पता लगा है कि कुछ समय पूर्व जब रोम के पोप भारत आये थे तो आपने अपने बच्चों को उनसे बपतिस्मा दिलवाकर उन्हें ईसाईधर्म में दीक्षित कराया था। कृपया बताएँ कि यह सत्य है, या मात्र अफ़वाह पर आधारित है? पत्र का उत्तर न आने पर हमने पुन: उसी प्रकार रजिस्टर्ड पत्र (reminder) द्वारा उत्तर माँगा। उस पत्र में हमने यह भी लिख दिया कि ३० अक्टूबर १९९४ तक इस पत्र का उत्तर न आने पर हम यह मानने को विवश होंगे कि हमने जो सुना है, वह सत्य है। अन्तत: ६ नवम्बर १९९४ को रजिस्टर्ड पत्र द्वारा हमने उन्हें सूचित कर दिया कि निर्धारित तिथि तक आपका उत्तर न आने से 'मौनं सम्मतिलक्षणम्' के सार्वभौम नियम के अनुसार आपने स्वीकार कर लिया है कि हमने जो सुना है, वह सत्य है।

श्रीमती सोनिया गांधी देश में ईसाई मिश्नरियों को उनके काम में भरपूर संरक्षण व सहायता दे रही हैं जिन्हें धर्मपरिवर्तन के लिए विदेशों से प्रतिवर्ष १४०० करोड़ रुपये मिलते हैं। मिश्नरियों की इन गतिविधियों के फलस्वरूप देश में हिन्दू आबादी, जो आज़ादी के समय लगभग ८० प्रतिशत थी, अब ६५ प्रतिशत रह गई है जबकि ईसाइयों की आबादी १ प्रतिशत से बढ़कर ३ प्रतिशत और मुसलिम आबादी १५ प्रतिशत से बढ़कर २८ प्रतिशत हो गई है।

मातृत्व की तथाकथित मूर्त्ति मदर टेरीसा के निर्देशन में भारत के ईसाईकरण का आन्दोलन प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में द्रुतगति से चल रहा है। मदर टेरीसा द्वारा समान नागरिक संहिता का विरोध, ईसाई बन जाने पर भी हरिजनों, गिरिजनों आदि के लिए हिन्दू हरिजनों के समान सुविधाओं की माँग, श्री ओम्प्रकाश त्यागी के छल-बल से धर्मान्तरण विरोधी बिल का विरोध आदि के होते हुए टेरीसा को भारतरत्न की उपाधि देना भारत सरकार की राष्ट्र-विरोधी तथा साम्प्रदायिकता पोषक नीति का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

वस्तुत: क़ुरान की शिक्षा के रहते न भारत में एकता हो सकती है और न विश्व में शान्ति।

ऐसी स्थिति में सोनिया परिवार के हाथों में देश के शासन की बागडोर थमा देना क्या देशद्रोह नहीं होगा?

Scanned by CamScanner

आर्याभिविनय का प्रभाव

आर्याभिविनय के दूसरे अध्याय (प्रकाश) के पहले मन्त्र में ऋषि दयानन्द ने लिखा—

"हे मेरे प्रभो! आपके अनुग्रह से हम सब लोग परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक, सहायक, परम पुरुषार्थी हों। एक-दूसरे का दु:ख न देख सकें। स्वदेशस्थादि मनुष्यों को परस्पर अत्यन्त निर्वैर, प्रीतिमान्, पाखण्डरहित करें।"

पुन: ३१वें मन्त्र में ऋषि परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं—

"हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्! अखण्ड चक्रवर्त्ती राज्य के लिए शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर। **अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हो और हम लोग पराधीन कभी न हों।** हे प्रभो! हमें 'द्यावापृथिवीभ्याम्'=स्वर्ग अर्थात् परमोत्कृष्ट मोक्षसुख (नि:श्रेयस) तथा पृथिवी अर्थात् संसार-सुख (अभ्युदय) इन दोनों के लिए समर्थ कर। अपनी कृपादृष्टि से हमारे लिए विद्या, पुरुषार्थ, हाथी, घोड़े, सुवर्ण, हीरादि रत्न, उत्कृष्ट शासन, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थों को धारण कर, जिससे हम लोग किसी पदार्थ के बिना दु:खी न हों। हे सर्वाधिपते! ब्राह्मण (पूर्णविद्यादिसद्गुणयुक्त) क्षत्र (क्षत्रवुद्धि विद्या तथा शौर्यादि गुणयुक्त, विश (अनेक विद्योद्यम) बुद्धि, विद्या, धन और धान्यादि वस्तुयुक्त तथा शूद्रादि भी सेवादि गुणयुक्त—**ये सब स्वदेशभक्त, उत्तम, हमारे राज्य में हों, अर्थात् किसी भी बात के लिए हम विदेशों पर निर्भर न हों।**"

दयानन्द के इन क्रान्तिकारी विचारों ने युवकों के हृदय में विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित कर दी और वे लड़ने-मरने को तैयार हो गये। इनमें अन्यतम थे—श्यामजीकृष्ण वर्मा।

विश्वविख्यात रूसी लेखक मेक्सिम गोर्की द्वारा भारत के मेज़िनी कहे जानेवाले तथा विदेशों में रहकर ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध सङ्घर्ष का गठन करनेवाले श्यामजीकृष्ण वर्मा का जन्म सन् १८५७ की ऐतिहासिक क्रान्तिवाले वर्ष में ४ अक्टूबर को सौराष्ट्र में कच्छ प्रदेश के माण्डवी नामक क़स्बे में हुआ था। भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन के वे आदि प्रवर्त्तक थे। भारतीय छात्रों के लिए इङ्गलैण्ड में पढ़ने के लिए सहायता के उद्देश्य से उन्होंने छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की। उन्हीं की प्रेरणा और सहायता से वीर सावरकर और लाला हरदयाल जैसे देशभक्त तैयार हुए।

Scanned by CamScanner

स्वामी दयानन्द की प्रेरणा और सहायता से श्यामजीकृष्ण इङ्गलैण्ड पढ़ने के लिए गये। स्वामीजी ने उनका परिचय ब्रिटिश संस्कृतज्ञ और ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष मोनियर विलियम्स से कराया। ऑक्सफ़ोर्ड से सन् १८८३ में बी०ए० की डिग्री प्राप्त करनेवाले वे प्रथम भारतीय थे। वहाँ के बेलिओल कॉलेज में पढ़ते समय वे महारानी विक्टोरिया के शासन में इङ्गलैण्ड के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रधानमन्त्री ग्लैड्सटोन के सुपुत्र (लार्ड) ग्लैड्स्टोन के सहपाठी थे। कालान्तर में श्यामजीकृष्ण ने प्रधानमन्त्री ग्लैड्स्टोन से भारत में गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग की थी।

श्यामजीकृष्ण वर्मा ने राष्ट्रीयता और ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध सङ्घर्ष का पहला पाठ स्वामी दयानन्द से ही पढ़ा था। १८७५ में जब स्वामीजी ने आर्यसमाज की स्थापना की थी तो उसके सदस्यों की सूची में स्वामी दयानन्द के साथ श्यामजीकृष्ण वर्मा का नाम भी था। स्वामीजी ने श्यामजी को अपनी उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का सदस्य मनोनीत किया था। आर्याभिविनय से प्रभावित श्यामजी ने १९०५ में रियासत के प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया और सारा जीवन एक आवारा मसीहा के रूप में व्यतीत किया।

क्रान्तिकारियों के गुरु और भारत में ब्रिटिश शासन, विशेषत: पुलीस की दृष्टि में आतङ्कवाद के प्रतीक चन्द्रशेखर आज़ाद जब तक आर्याभिविनय के कम-से-कम एक मन्त्र का पाठ नहीं कर लेते थे तब तक रोटी का एक टुकड़ा भी नहीं तोड़ते थे।

''**सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है**'', तथा ''**मेरा रंग दे बसन्ती चोला**'' जैसे गीतों के गायक रामप्रसाद बिस्मिल को कौन नहीं जानता? सामान्यरूप से मनुष्य मृत्यु से भयभीत होते हैं, परन्तु बिस्मिल मृत्युञ्जय थे। फाँसी से चार दिन पहले 'स्थितधी मुनि' के समान जेल की काल कोठरी में लिखी अपनी आत्मकथा में अगले जन्मों में '**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**' के आदर्श की पूर्त्ति का सङ्कल्प प्रकट किया और १९ दिसम्बर १९२७ ईसवी को सोमवार के सबेरे '**विश्वानि देव**' के वैदिक मन्त्र के उच्चारण के साथ फाँसी के फन्दे को स्वयं अपने गले में डाल लिया। उनकी अन्तिम इच्छा थी—

मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे।
बाक़ी न मैं रहूँ न मेरी आरज़ू रहे॥

रामप्रसाद बिस्मिल के ये शब्द ३० अक्टूबर १८८३ को अजमेर में

Scanned by CamScanner

व्यक्त अपने आदर्श ऋषि दयानन्द की भावना 'ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हो' के अनुरूप थे।

सन् १९२०-२१ के असहयोग के आन्दोलन के दिनों में कठोर यातनाएँ सहनेवाले सियालकोट के लाला गणेशदास ने अपने संस्मरणों में लिखा था—

"मैं बड़े गर्व और विश्वास के साथ कहता हूँ कि संसार की कोई भी शक्ति मुझे भयभीत नहीं कर सकती और बड़ी-से-बड़ी विपत्तियों में भी मैं समर्पण नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे आर्याभिविनय से अदम्य साहस, आध्यात्मिक शक्ति और मानसिक शान्ति प्राप्त हो चुकी है।"

स्वाधीनता संग्राम में आर्यों के लिए आर्याभिविनय अपूर्व शक्ति व प्रेरणा का स्रोत थी, है और रहेगी।

Scanned by CamScanner

आर्याभिविनय

आर्यों को वैदिक भक्ति के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए ऋषि दयानन्द ने 'आर्याभिविनय' नाम का अनुपम ग्रन्थ लिखा। उन्होंने स्वयं इस ग्रन्थ के निर्माण का प्रयोजन इस प्रकार लिखा है—

''इस ग्रन्थ से मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूप-ज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहार शुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे, जिससे नास्तिक और पाखण्ड मतादि अधर्म में मनुष्य न फँसे।''

—आर्याभिविनय की उपक्रमणिका

इस ग्रन्थ का लिखना ऋषि ने चैत्र शुक्ला १० गुरुवार, संवत् १९३२ को किया, यह ऋषि की लिखी उपक्रमणिका के निम्न श्लोक से स्पष्ट है—

चक्षूरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
दशम्यां गुरुवारेऽ यं ग्रन्थारम्भः कृतो मया॥

परोपकारिणी सभा (अजमेर) द्वारा प्रकाशित आर्याभिविनय में द्वितीय प्रकाश के अन्त में 'समाप्तश्चायं ग्रन्थः' पाठ मिलता है। किन्तु इस ग्रन्थ की अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों परीक्षाओं से विदित होता है कि वस्तुतः यह ग्रन्थ अपूर्ण है। स्वयं ऋषि ने श्री गोपालराव को (ज्येष्ठ बदि ९ संवत् १९३२) को लिखा था—

''आर्याभिविनय के दो अध्याय तो बन गये हैं, और चार आगे बनने हैं।''

इससे स्पष्ट होता है कि पुस्तक अपूर्ण है।

ग्रन्थ की उपक्रमणिका के पाँचवें श्लोक की भाषा में ऋषि लिखते हैं—

''इस ग्रन्थ में केवल चार वेदों और ब्राह्मणग्रन्थों के ही मूल मन्त्रों का प्राकृत भाषा में व्याख्यान किया है।''

परन्तु उपलब्ध संस्करणों में दो ही वेदों के १०७ मन्त्रों और तैत्तिरीय आरण्यक के १ मन्त्र का व्याख्यान उपलब्ध है। आर्याभिविनय की समकालीन संस्कारविधि के प्रथम संस्करण (संवत् १९३३) में विषय-सूची की पीठ पर पुस्तकों का जो सूची-पत्र छपा है, उसमें आर्याभिविनय के दो भागों का उल्लेख मिलता है। ''दो अध्याय (प्रकाश) तो बन गये हैं और चार आगे बनने को हैं'' से स्पष्ट है कि ऋषि इस ग्रन्थ को ६ अध्यायों में पूरा करना चाहते थे जिनमें ४ में चारों वेदों के और शेष दो में ब्राह्मणों तथा उपनिषदों के मन्त्रों की व्याख्या करना चाहते थे।

Scanned by CamScanner

वेदभाष्य

सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि तथा पञ्चमहायज्ञविधि के पश्चात् स्वामीजी वेदों का भाष्य करना चाहते थे। कारण? स्वामीजी जो कुछ कहते थे या लिखते थे, वह सब वेदों के आधार पर कहते या लिखते थे, क्योंकि वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं और ईश्वरप्रदत्त ज्ञान होने से वे निर्भ्रान्त और इसलिए स्वत:प्रमाण हैं।

राजा राममोहनराय और केशवचन्द्रसेन नये भारत का निर्माण बहुत कुछ पाश्चात्य विचारों की नींव पर करना चाहते थे। इसके विपरीत स्वामी दयानन्द का विश्वास था कि किसी भी राष्ट्र का निर्माण विदेशी भित्ती पर नहीं हो सकता, इसलिए वे उसे अपने गौरवपूर्ण अतीत की सुदृढ़ चट्टान पर खड़ा करना चाहते थे। वे चाहते थे कि हमारे देश का संविधान इस-उस देश के संविधानों की नकल या खिचड़ी न होकर अपने भारतीय आदर्शों के अनुरूप ढला हो, उसमें अपने देश की मिट्टी की सुगन्धि हो, वेद, मनुस्मृति, शुक्रनीति, चाणक्यनीति, रामायण और महाभारत के ऋषियों की आत्मा बसी हो।

परन्तु ऋषि दयानन्द ने अपने सामने वैदिक युग को तेजी से समाप्ति की ओर बढ़ते पाया। सच तो यह है कि वेदों के सम्बन्ध में भ्रान्तियाँ महाभारत काल से लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व से उत्पन्न होने लगी थीं। मध्य काल तक आते-आते मानवजाति शतश: मत-मतान्तरों में विभक्त हो गई थी। आर्ष परम्परा धीरे-धीरे ह्रासोन्मुख होकर लुप्तप्राय-सी हो गई थी। शतपथ आदि वेद के व्याख्यानग्रन्थों तक में प्रक्षेप कर उन्हें दूषित कर दिया गया था और उन्हें भी 'वेद' संज्ञा देकर अपनी मान्यताओं की वेद के नाम पर पुष्टि की जा रही थी। ऋषि दयानन्द के समय उक्त भारतीय मत-मतान्तरों और अवैदिक मान्यताओं के पोषक पौराणिक वेदभाष्यों के अतिरिक्त मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वान् जान-बूझकर वेदों को विकृत रूप में प्रस्तुत करने के लिए कटिबद्ध थे।

ऐसी स्थिति में दयानन्द के लिए आवश्यक था कि वे वेदों के वास्तविक स्वरूप को लोगों के सामने रक्खें और इसके लिए वेदों का ऐसा भाष्य किया जाए जो प्राचीन आर्षग्रन्थों के अनुकूल होने के साथ-साथ तर्क प्रतिष्ठित हो और जिससे उनका सब सत्य विद्याओं का पुस्तक होना सिद्ध हो। इस प्रकार दयानन्द वेदभाष्य में प्रवृत्त हुए।

वेदभाष्य का आरम्भ स्वामीजी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका से किया जिसे उन्होंने विक्रमी संवत् १९३३ में लिखा। आर्याभिविनय की रचना

Scanned by CamScanner

वे उससे एक वर्ष पूर्व संवत् १९३२ में कर चुके थे। इस प्रकार संसार ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य का रसास्वादन वेदभाष्य से एक वर्ष पूर्व कर चुका था।

दयानन्द का 'वेदों की ओर लौटो' का आह्वान कोई प्रतिगामी पग नहीं था, क्योंकि उनका विश्वास था कि वेद मनुष्य के लिए अपेक्षित सम्पूर्ण ज्ञान के शाश्वत भण्डार हैं। एच० डी० ग्रिस्वोल्ड ने 'Evangelogical Review' के जनवरी १८९२ के अङ्क में लिखा था कि दयानन्द का 'Back to the Vedas' का धार्मिक नारा स्फुट (explicit) न होने पर भी अनुमित (implicit) रूप में "India for Indians" के राष्ट्रीय नारे का द्योतक था। इस प्रकार दयानन्द भारत में राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद का आदि प्रवर्त्तक था। देश के संविधान में समाविष्ट मूलभूत तत्त्वों को उजागर करने का श्रेय उनकी आर्षदृष्टि को ही है। उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज राजनैतिक दल न होने पर भी देश का सर्वाधिक सशक्त और प्रभावी सङ्गठन है। जैसे पेड़ का पता उसके फलों से लगता है, वैसे ही सङ्गठन का पता उसके सदस्यों से लगता है। लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, भाई परमानन्द, श्यामजीकृष्ण वर्मा, महादेव गोविन्द रानाडे, सरदार अजीतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आज़ाद, लालबहादुर शास्त्री, गोविन्दवल्लभ पन्त, चौधरी रामभजदत्त आदि सैकड़ों स्वतन्त्रता सेनानी आर्यसमाज के सदस्य रहे अथवा उससे प्रभावित रहे।

आर्याभिविनय का सार

आर्याभिविनय का सार उसके द्वितीय भाग के ३१वें मन्त्र में इस प्रकार उपलब्ध है—"हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! आप संसार के राजाओं में सबसे महान् हैं। हमें उत्तम अन्न आदि से पुष्ट करो। हे प्रभो! हमें सत्य सनातन वेदविद्या की प्राप्ति के लिए बुद्ध्यादि बल से सदैव युक्त करो। हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्! 'क्षत्राय' अखण्ड चक्रवर्त्ती राज्य के लिए शौर्य, धन, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त हम लोगों को कृपा से यथावत् पुष्ट करो। **अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न रहें।**

संसार सुख और मोक्षसुख इन दोनों के लिए समर्थ करो। तुम धर्मशील तथा धर्मस्वरूप हो, हम लोगों को भी धर्मात्मा करो। तुम निर्वैर हो, हमें भी निर्वैर करो। हमारे लिए विद्या, पुरुषार्थ, हाथी, घोड़े, स्वर्ण, हीरे, रत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थों को धारण करो जिससे हम किसी पदार्थ के अभाव में दुःखी न हों। हे सर्वाधिपते! ब्राह्मण

Scanned by CamScanner

(विद्या), क्षत्र (शौर्यादिगुण), विश (अनेक) विद्योद्यम बुद्धि और धन-धान्यादि वस्तुयुक्त तथा शूद्रादि (सेवादि गुणयुक्त) ये सब स्वदेशभक्त हमारे राज्य में हों। इन सबका धारण आप करो जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आपकी कृपा से सदा बना रहे।''

जिस सङ्गठन का संस्थापक अपने अनुयायियों को विदेशी शासन से देश को मुक्त कराने के लिए अहर्निश परमात्मा से प्रार्थना करने की प्रेरणा करता हो, वह ब्रिटिश शासन की आँख की किरकिरी बने बिना कैसे रह सकता था? फलत: आर्यसमाज और उसके सक्रिय कार्यकर्त्ताओं को देशद्रोही घोषित करके उनपर अभियोग चलाये गये। सन् १९०९ में पटियाला राज्य में एक साथ तीस आर्यसमाजियों को गिरफ़्तार करके जेल में डाल दिया गया। इसमें प्रमुख अभियुक्त थे राजा ज्वालाप्रसाद जो कालान्तर में पञ्जाब और बङ्गाल के राज्यपाल, दिल्ली के चीफ़ कमिश्नर तथा केन्द्रीय सरकार के कैबिनेट सेक्रेटरी के पदों पर नियुक्त श्री धर्मवीरजी के पिता थे। उनके विरुद्ध प्रस्तुत अभियोग-पत्र (चार्जशीट) का अधिकांश आर्याभिविनय तथा सत्यार्थप्रकाश के उद्धरणों पर आधारित था। अभियुक्तों की ओर से मुक़दमे की पैरवी स्वामी श्रद्धानन्द ने की थी। अन्तत: वे सब मुक्त कर दिये गये थे।

सत्यार्थप्रकाश—सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास के सम्बन्ध में ब्रिटिश विद्वानों का कहना था कि इसका प्रयोजन यह निश्चित करना था कि देश के स्वतन्त्र हो जाने पर देश का शासन किस प्रकार किया जाएगा—उसके निर्देशक सिद्धान्त (Directive principles) क्या होंगे? ऋषि दयानन्द के अनुसार वे वेद, मनुस्मृति, शुक्रनीति, चाणक्यनीति, महाभारत आदि के चिन्तन के अनुरूप होने चाहिएँ।[१]

---

१. कैसे बना हमारा संविधान

सन् १९४२ की अविस्मरणीय लोकक्रान्ति ने अंग्रेज़ी हुकूमत का यह आत्मविश्वास तोड़ दिया था कि अब वह अपना प्रभुत्व और अधिक दिनों तक बनाये रख सकती है। मजबूरन, इङ्गलैण्ड की श्री एटली के प्रधान-मन्त्रित्ववाली सरकार को १४ मार्च, १९४६ को घोषित करना पड़ा कि भारत को भी स्वतन्त्र होने का अधिकार है। इस उद्घोष के तुरन्त बाद उनका एक मन्त्रिमण्डल मिशन भारत आया और उसी ने प्रस्ताव किया कि भारत की एक संविधान-सभा गठित की जाए। उस समय के विधानमण्डलों के सदस्यों को ही संविधान सभा के गठन के लिए मतदाता मान लिया गया। जुलाई १९४६ में ही इसका चुनाव भी हो गया।

Scanned by CamScanner

ऋषि दयानन्द ने मन्त्रियों के लिए स्वदेशोत्पन्न होने के साथ-साथ उनका वेदों का विद्वान् होना भी आवश्यक ठहराया। ब्रिटिश सरकार के अनुसार इसका निहितार्थ था कि भारत में रहनेवाले ईसाई भी मन्त्री न बनने पाएँ। ईसाई पादरियों के मत में स्वामी दयानन्द मूलतः ईसाइयत के कट्टर विरोधी इसलिए थे कि वे भारत से ब्रिटिश सत्ता का उच्छेद करना चाहते थे।

आर्यसमाज भारत की दुर्दशा का सबसे बड़ा कारण विदेशी शासन को मानता था और इसलिए वह उससे मुक्त होना चाहता था। देशप्रेम की भावना प्रमुख होने के कारण वह भारत का एक ऐसा राष्ट्रीय धर्म था जो देश से विदेशी तत्त्वों को मिटाना चाहता था। संयुक्त प्रान्त (वर्त्तमान उत्तरप्रदेश) के गुप्तचर विभाग के उप-अधीक्षक सी०ई०डब्ल्यू० सैण्ड्स

संविधान के पहले सत्र के लिए, जो ९ दिसम्बर, १९४६ को प्रारम्भ हुआ था, आचार्य जे०वी० कृपलानी के प्रस्ताव पर अध्यक्ष डॉ० सच्चिदानन्द सिन्हा को अस्थायी तौर पर निर्वाचित किया गया। ११ दिसम्बर १९४६ को ही, कुल दो दिनों बाद, स्थायी अध्यक्ष के रूप में देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद को निर्वाचित किया गया। विश्व को वैशाली गणतन्त्र के रूप में लोकतान्त्रिक पद्धति का उपहार देनेवाले बिहार को भारत को संविधान सभा का अध्यक्ष देने का गौरव भी प्राप्त हुआ।

संविधान-निर्माण के सम्बन्ध में पहला सत्र ९ दिसम्बर १९४६ को शुरू हुआ। तब तक इङ्गलैण्ड के मन्त्रिमण्डल मिशन के प्रस्ताव के अनुसार ही २ सितम्बर १९४६ को एक अन्तरिम सरकार गठित की गयी थी। १५ अगस्त १९४७ को सत्ता का विधिवत् हस्तान्तरण कर दिया गया। इधर संविधान-निर्माण का काम चलता रहा। इसका प्रारूप तैयार करने के लिए संविधान-सभा की १५ समितियाँ गठित की गयीं। इन समितियों के दायित्व थे कि वे १९३५ के भारत-शासन के अधिनियमों, ब्रिटिश, अमेरिकी, आयरिश, ऑस्ट्रेलियन, कनाडाई, जापानी तथा दक्षिण अफ्रीकी देशीय संविधानों, उनके लागू कानूनों के स्रोतों की समीक्षा करें। इन्हें यह कार्य भी सौंपा गया कि भारतीय गणतन्त्र का संविधान रचने का वे समितियाँ कानून, नियम, विनियम, अध्यादेश, कालबद्ध आदेश आदि तथा न्यायिक निर्णय संविधान के विशेषज्ञ वकीलों, बुद्धिजीवियों और लेखकों के विचार, संविधान सभा के वाद-विवाद तथा पूर्वागत संविधान आदि के आधार पर अलग-अलग अपनी अनुशंसाएँ प्रस्तुत करें। समितियों के सङ्कलन और सम्पादन का दायित्व जिस समिति को दिया गया वही बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर की अध्यक्षतावाली सम्पादन समिति थी।

इस समिति को अलग से कोई तथ्य एकत्र करने का या नीति निर्धारण

Scanned by CamScanner

ने विविध ज़िलों के गुप्तचर विभाग के कर्मचारियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर एक पुस्तक 'Arya Samaj in the United Provinces' लिखी थी। सन् १९१० में प्रकाशित इस गोपनीय पुस्तक को भारत सरकार ने इतना महत्त्व दिया कि उसके आधार पर वह आर्यसमाज पर प्रतिबन्ध लगाने पर विचार करने लगी। उसके विचार में स्वामी दयानन्द ने आर्य-समाज की स्थापना ही एक क्रान्तिकारी और जनता में विद्रोह उत्पन्न करनेवाले सङ्गठन के रूप में की थी। जहाँ राजा राममोहन राय ने हिन्दू समाज में आयी कुरीतियों को दूर करके ब्राह्मसमाज के रूप में एक नवीन धर्म को खड़ा किया वहाँ स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज को एक नये धर्म के रूप में नहीं, अपितु प्राचीन आर्यावर्त्त के विलुप्त गौरव का स्मरण कराते हुए उसे पुनः जगद्गुरु अर्थात् सब देशों का अग्रणी बनाना था।

का कोई खास दायित्व नहीं भी रहा हो तो भी प्रस्तुत सामग्री सङ्कलित कर, आवश्यक बिन्दुओं को सम्पादित कर नियोजित करने का काम भी कम श्रम-साध्य नहीं था। श्री अम्बेडकर की अध्यक्षतावाली समिति के सहयोगी सदस्यगण थे सर्वश्री एन० गोपालस्वामी आयङ्गर, के०एम० मुंशी, अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर, मु० सहदुल्लाह, सर वी०एल० मित्र और डी०पी० खेतान। बाद में कतिपय कारणों से श्री खेतान के बदले श्री टी०टी० कृष्णमाचारी को मनोनीत किया गया।

सङ्कलित तथ्यों के आधार पर संविधान-सभा द्वारा भारतीय संविधान का प्रारूप तैयार किया गया। कहा जाता है कि उसकी मूलप्रति कहीं खो गयी। लेकिन डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी स्मरण शक्ति से ही उसे दोबारा हू-ब-हू तैयार करवा दिया था। बाद में जब वह खोयी हुई प्रति मिल गयी तो लोग चकित थे कि उसकी हू-ब-हू प्रतिलिपि राजेन्द्रबाबू ने कैसे लिखवा दी थी। इसका प्रारूप २१ फ़र्वरी १९४८ को तैयार हो गया, जिसपर सर्वप्रथम ४ नवम्बर से ९ नवम्बर १९४८ तक विमर्श हुआ, जिसे प्रथम वाचा की संज्ञा दी गयी। दूसरे वाचा का सत्र १५ नवम्बर १९४८ से १७ अक्टूबर १९४९ तक चला। तीसरा वाचा १४ नवम्बर १९४९ से शुरू हुआ तथा २६ नवम्बर १९४९ को उसको अन्तिम रूप दिया गया। संविधान सभा के अध्यक्ष की हैसियत से उसके अन्तिम रूप पर डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने अपने हस्ताक्षर कर उसे पारित घोषित किया। उसी संविधान को २६ जनवरी १९५० से लागू किया गया।

इस बीच संविधान में अनेक संशोधन किये गये। कई बार सरकार के आदेशों को भी संविधान की सीमा से बाहर मानकर निरस्त भी किया जाता रहा। संविधान को लागू हुए आज छियालीस वर्ष पूरे हो चुके हैं।

Scanned by CamScanner

सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में ब्राह्मसमाज की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा—

''इन लोगों में स्वदेशभक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत-से लिये हैं। खान-पान विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं।

''अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करना तो दूर रहा, उसके स्थान में पेटभर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेज़ों की प्रशंसा भरपेट करते हैं, ब्रह्मादि ऋषियों का नाम भी नहीं लेते, प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेज़ों के सृष्टि में आज तक कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्यावर्त्तीय लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई।

''वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही, परन्तु निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश्य के पुस्तक में साधुओं की संख्या में ईसा, मूसा, मुहम्मद, नानक और चैतन्य तो लिखे हैं, किसी ऋषि-महर्षि का नाम भी नहीं लिखा। इससे जाना जाता है कि इन लोगों ने जिनका नाम लिखा है, ये उन्हीं के मतानुसारी—मत वाले हैं।

''भला! जब आर्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न-जल खाया-पिया, अब भी खाते-पीते हैं, तब अपने माता-पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़के दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्मसमाजी और प्रार्थनासमाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इङ्गलिश पढ़के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का बुद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है?''

अपने प्रादुर्भाव के समय देश की दुर्दशा पर आँसू बहाते हुए स्वामीजी ने लिखा—

''अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद और परस्पर के विरोध से अन्य देशों में तो राज्य करने की कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त (शासित) हो रहा है। (देसी रियासतों के रूप में) कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।''

तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के अनुसार उक्त समूचे विवरण का प्रयोजन देश के प्राचीन गौरव का स्मरण कराते हुए उसे फिर से पाने की लालसा को जगाकर जनता में अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध विद्रोह की अग्नि भड़काना था।

Scanned by CamScanner

गोरक्षा आन्दोलन

ऋषि दयानन्द को राजद्रोही कहा जाने का एक बड़ा कारण उनके गोहत्या को लक्ष्य करके सत्यार्थप्रकाश में लिखे गये ये वचन थे—

१. भारत की दुर्दशा गो-हत्यारे विदेशी शासकों के कारण हो रही है।

२. जब आर्यों का राज्य था तब महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे। तब आर्यावर्त्त और अन्य देशों में मनुष्यादि प्राणी बड़े आनन्द में बरतते थे। जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आकर गौ आदि पशुओं को मारनेवाले मद्यपायी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की वृद्धि होती जा रही है।

इस सन्दर्भ के अन्तिम वाक्य में स्वामीजी ने विदेशी शासक मुसलमानों तथा अंग्रेज़ों को मांसाहारी और मद्यपायी बतलाकर लिखा कि जब से इनका शासन हुआ है तब से इस देश में रहनेवालों के दुःखों में वृद्धि होती जा रही है। तत्कालीन सरकारी अधिकारियों की दृष्टि में यह वाक्य स्पष्ट रूप से अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह की भावना को जगानेवाला था। इतना ही नहीं, आगे चलकर दयानन्द को राजद्रोही घोषित करने का एक आधार यह भी था कि उन्होंने गोरक्षा के आन्दोलन को पुष्ट करने के लिए 'गोकरुणानिधि' नाम से एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की भी रचना की थी। उसमें उन्होंने गो-हत्यारों के प्रति सत्यार्थप्रकाश की अपेक्षा कहीं अधिक कठोर शब्दों का प्रयोग किया है। गो-हत्या के कारण वे इतने दुःखी थे कि उस दुःख के आतिशय्य के कारण, मानो, उन्हें परमेश्वर की दया और न्याय में भी सन्देह हो गया था। अजमेर में कर्नल ब्रुक्स से बातचीत करते हुए स्वामीजी ने स्पष्ट कह दिया था कि "यदि गोहत्या बन्द नहीं होगी तो १८५७ को फिर दुहराया जा सकता है।" अंग्रेज़ सरकार को गोकरुणानिधि में राजद्रोह की गन्ध आने लगी थी। ऋषि दयानन्द की योजना थी कि गोवध निषेध के निमित्त दो करोड़ लोगों के हस्ताक्षरों से युक्त एक ज्ञापन महारानी विक्टोरिया को भेजा जाए, किन्तु स्वामीजी के निधन के कारण यह योजना कार्यान्वित न हो सकी।

ऋषि दयानन्द द्वारा संस्थापित आर्यसमाज को राजद्रोही समझा जाने का एक बड़ा कारण यह था कि यह गोरक्षा के लिए प्रचण्ड आन्दोलन करनेवाली संस्था है और वह समूचे भारत में गोवध बन्द कराना चाहती

Scanned by CamScanner

है और वह गोवध का प्रधान कारण गोभक्षक विदेशी शासकों को समझती है, इसलिए देश से उनका शासन हटाना चाहती है। जहाँ तक स्वामी दयानन्द का सम्बन्ध है, उन्होंने मुख्यत: आर्थिक कारणों के आधार पर गोरक्षा पर इतना बल दिया था और गोकृष्यादिरक्षिणी सभा की स्थापना की थी, परन्तु सर वेलेण्टाइल शिरोल-जैसे पत्रकारों के विचार में स्वामी दयानन्द ने गौ के प्रति सब हिन्दुओं में सामान्य रूप से प्रचलित श्रद्धा और अवध्यता की भावना का लाभ उठाते हुए हिन्दुओं को गोवध-निषेध के माध्यम से अंग्रेज़ों के विरुद्ध राजद्रोह के लिए एक मञ्च पर सङ्गठित करने का प्रयास किया।

लण्डन के Times of India के विशेष संवाददाता वेलेण्टाइल शिरोल की प्रसिद्ध उक्ति है—"Wherever there is Arya Samaj, there is unrest"—जहाँ भी आर्यसमाज है, वहाँ अशान्ति है। पूर्वोक्त सेंड्स द्वारा भेजी गई रिपोर्ट के आधार पर भारत सरकार के गुप्तचर विभाग के निदेशक क्लीवलैण्ड ने भारत सरकार को १९१० में लिखा—

"In my opinion the Arya Samaj is the most dangerous anti-British movement in India. It attacks social, religious and political convictions, converts unrest and discontent into dissatisfaction and unites many different classes on a national (all India) and distinctly anti-British basis.

"We have now arrived the stage when Police, and probably the Army also think that sedition has been and must be inherent in the system and aims of the body of the Arya Samaj."

भारत सरकार के Criminal Intelligence Department के निदेशक स्टीवन्सन मूर के निरीक्षण में १९१२ ईसवी में आर्यसमाज के राजनैतिक स्वरूप को सिद्ध करने के लिए एक रिपोर्ट तैयार की गई थी जिसमें उन सभी प्रमाणों को इकट्ठा किया गया था जो सरकार की ओर से इस संस्था को राजद्रोही सिद्ध करने के लिए दिये जा सकते थे। उनमें से कतिपय इस प्रकार थे—-

१. स्वामी दयानन्द सदा आर्यावर्त्त के पुरुज्जीवन पर बल दिया करते थे। देशभक्ति और राष्ट्रीयता शब्दों का लगातार प्रयोग करते थे। एक बार एक पादरी से उन्होंने कहा था कि मुझे यह दिखाई दे रहा है कि अब आपके पतन के दिन निकट आ रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि उनके विचार प्रधानरूप से राजनैतिक थे।

Scanned by CamScanner

२. सन् १८९७ में पञ्जाब के लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर सैर मैक्वर्थ यङ्ग ने वायसराय एल्गिन को अपने प्रान्त में असन्तोष के विकास के कारणों पर प्रकाश डालते हुए एक पत्र में लिखा था—

''समाचार-पत्रों के अतिरिक्त प्रान्त में कुछ अन्य ऐसी एजेन्सियाँ भी हैं, जो सरकार के विरुद्ध मिलकर सङ्गठन बनाने की प्रवृत्ति रखती हैं। काँग्रेस तथा इसके नीचे के विभिन्न सङ्गठनों का उद्देश्य ऊपरी तौर से तो राजनैतिक और धार्मिक विचारों का प्रसार है, किन्तु अनेक सङ्गठनों में ऐसे व्यक्ति हावी हैं जो ब्रिटिश सरकार के प्रति विरोध का भाव रखनेवाले हैं। पञ्जाब की ऐसी संस्थाओं में आर्यसमाज का नाम उल्लेखनीय है। यद्यपि आर्यसमाज में सरकारी सेवा करनेवाले अनेक व्यक्ति हैं, फिर भी इसकी प्रवृत्ति सामान्यरूप से विद्रोहपूर्ण है।''

३. १८९९ ईसवी के लगभग पञ्जाब में आर्यसमाजी खुले रूप में अपने सार्वजनिक भाषणों में राजद्रोह की चर्चा करने लगे थे। लाला मुंशीराम और पण्डित रामभजदत्त ने गुजरात, सियालकोट और गुजराँवाला में गुरुकुल की स्थापना के लिए धन-संग्रह करते हुए जो भाषण दिये थे, उनमें सरकार की कड़ी आलोचना करते हुए कहा गया था कि सिपाही बड़े बेवकूफ़ हैं जो सात-आठ रुपये मासिक वेतन पर जान देने के लिए सेना में भर्ती होते हैं, किन्तु जब वे गुरुकुल से पढ़कर निकलेंगे तो इन बातों को अच्छी तरह समझ लेंगे। १९०३ में झङ्ग में गुरुकुल काङ्गड़ी के लिए व्याख्यान देते समय लाला मुंशीराम ने इसी तरह की बातें कहीं थीं।

४. मई १९०६ में काँग्रेस के डेपुटेशन में प्रतिनिधित्व करने के लिए इङ्गलैण्ड जाने से पहले मई १९०६ में लाला लाजपतराय ने एक व्याख्यान दिया था। उसमें उन्होंने बड़ी आपत्तिजनक बातें कहीं थीं। भारत से बाहर बोस्टन में भी दिये गये उनके भाषण भी आपत्तिजनक थे। उनमें भारत के अकालों और महामारियों का सारा दोष अंग्रेज़ सरकार पर डालते हुए यहाँ तक कहा गया था कि भारत सरकार की वित्तीय नीति भारतीय उद्योग धन्धों को चौपट करनेवाली है। देश निर्वासन के बाद माँडले से लौटने के बाद भी उन्होंने कहा था कि उनके आदर्श और विश्वास वैसे ही हैं।

५. खुफ़िया पुलिस ने सरकार को ऐसी अनेक सभाओं की रिपोर्ट दी थी जिनमें आर्यसमाजी बड़ी संख्या में शामिल होते थे। यहाँ तक कहा गया था कि सरकार के विरुद्ध प्रचार करने के लिए आर्यसमाज ने वैतनिक प्रचारक रक्खे हुए हैं। अप्रैल १९०८ में लायलपुर आर्यसमाज के तीसरे वार्षिकोत्सव पर हुए व्याख्यानों में इस बात पर बल दिया गया था कि

Scanned by CamScanner

हिन्दू तथा मुसलमान अपने स्वाभाविक शत्रु ब्रिटेन के विरुद्ध सङ्घर्ष करने के लिए एक हो जाएँ और लोगों से अपील की गई थी कि वे विदेशी चीनी का प्रयोग न करें।

६. १० जून १९०६ को लाहौर के आर्यसमाजियों ने वहाँ के एक प्रमुख आर्यसमाजी भगत ईश्वरदास के घर पर एक गुप्त बैठक की थी। इसमें यह कहा गया था कि सरकार सिक्खों को हिन्दुओं से अलग करने की कोशिश कर रही है। इसपर यह निश्चय किया गया कि अमृतसर आदि केन्द्रों में इस दृष्टि से सिक्ख प्रचारकों को भेजकर सिक्खों को सरकार की नीति समझाई जाए और यह बताया जाए कि उनका हित हिन्दुओं के साथ मिलकर रहने में ही है।

७. केन्द्रीय गुप्तचर विभाग की ओर से भारत सरकार को पञ्जाब के सम्बन्ध में भेजी गई रिपोर्ट में बताया गया था कि १९०७ में आर्यसमाज की ओर से लाला हंसराज के नेतृत्व में एक शिष्टमण्डल पञ्जाब के लेफ़्टिनेण्ट गवर्नर सर डेंजिल इब्बटसन से मिला था और उसने यह बताया था कि पञ्जाब में हो रही राजद्रोही घटनाओं से आर्यसमाज का सामूहिक रूप से कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी इब्बटसन ने इस बात को इसलिए नहीं माना कि प्रान्त के सभी डिप्टी कमिश्नरों ने इसके सर्वथा विपरीत रिपोर्ट दी थी। इसके आधार पर उसने भारत सरकार को सूचित किया था कि जहाँ कहीं आर्यसमाज है, वह राजद्रोह का केन्द्र है—'Wherever there is Arya Samaj, there is sedition' लाला लाजपतराय का राजद्रोही होना तो सर्वविदित है, डी०ए०वी० कॉलिज लाहौर के प्रोफ़ेसर भाई परमानन्द के घर की तलाशी में बम निर्माण की विधि बतानेवाली एक पुस्तक मिली है और अजीतसिंह के लिए चन्दा इकट्ठा किये जाने के कुछ प्रमाण मिले हैं।

८. लायलपुर में शहरी बस्ती विधेयक (Colonisation Bill) के विरुद्ध चलाये जानेवाले आन्दोलन के प्रमुख आर्यसमाजी ही थे। २१ अप्रैल १९०७ के अन्त में जब लाला लाजपतरायजी लायलपुर की एक सभा में भाषण देने पहुँचे तब वहाँ उस समय के प्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता सरदार अजीतसिंह (अमर शहीद भगतसिंह के चाचा) का भाषण हो रहा था। लाला लाजपतरायजी ने इस क़ानून के विरुद्ध भाषण देते हुए घोषणा की कि "भारतभूमि के स्वामी हमारे बाप-दादा थे और अब हम उसके स्वामी हैं। अंग्रेज़ों को हमें उससे वञ्चित करने का कोई अधिकार नहीं है।" लालाजी के इस भाषण से बड़ा जोश फैल गया। लालाजी के बैठते

Scanned by CamScanner

ही बाँकेदयाल ने स्वरचित प्रसिद्ध गीत 'पगड़ी संभाल जट्टा'[१] गाया और जनता से गवाया। यह गीत शीघ्र ही 'बन्देमातरम्' की तरह पञ्जाब का राष्ट्रगीत बन गया। इस गीत में हिन्दू, मुसलमान तथा सिक्ख सबको मिलकर अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध करने की प्रेरणा देते हुए कहा गया कि इस नये क़ानून से जाटों की सारी इज्जत धूल में मिल रही है। उन्हें अपनी पगड़ी (इज्जत) की रक्षा के लिए एकजुट होकर सङ्घर्ष के लिए तैयार हो जाना चाहिए। इस गीत के बाद चौधरी शहाबुद्दीन (१८८६ में लाहौर में स्थापित डी०ए०वी० स्कूल के और इस प्रकार स्कूल के प्रिंसिपल ला० हंसराजजी के भी प्रथम विद्यार्थी तथा कालान्तर में पञ्जाब असेम्बली के स्पीकर) रामभजदत्त चौधरी और सरदार अजीतसिंह के भाषण हुए। अन्त में लाला लाजपतराय का अत्यन्त प्रभावशाली भाषण हुआ, परन्तु उस सभा में सबसे अधिक जोशीला भाषण अजीतसिंह का था जिसने श्रोताओं को अन्दर तक हिला दिया। उस जलसे में भारी संख्या में सरकारी अफ़सर तथा सिपाही उपस्थित थे, किन्तु किसी की भी हस्तक्षेप करने की हिम्मत नहीं पड़ी।

दयानन्द जन्मजात क्रान्तिकारी था। स्वभावत: उसके अनुयायी भी उसी मार्ग के अनुगामी थे। स्वामीजी ने सबसे पहले आर्यसमाज की स्थापना राजकोट में की थी। उसी समय ब्रिटिश सरकार ने बड़ौदा नरेश को गद्दी से उतार दिया। आर्यसमाजियों ने महाराजा का समर्थन किया। काठियावाड़ की रियासतों में ब्रिटिश हितों की रक्षा करना वहाँ पर नियुक्त वायसराय के प्रतिनिधि जेम्सपील का दायित्व था। वह आर्यसमाज के नाम से बिदकता था। इसलिए वहाँ आर्यसमाजियों के साथ बड़ा क्रूर व्यवहार किया गया, फलत: राजकोट का आर्यसमाज छह मास से अधिक

---

१. इस गीत का अविकल रूप इस प्रकार है—

पगड़ी संभाल जट्टा, पगड़ी संभाल ओए।
लुट लित्ता माल तेरा, हालो बेहाल ओए॥
फ़सलां नू खा गये कीड़े, तन ते नहीं तेरे लीड़े।
भुक्खां ने खूब नपेड़े, रोन्दे ने बाल ओए॥
पगड़ी संभाल जट्टा, पगड़ी संभाल ओए।
हिन्द है मन्दिर तेरा, इसदा पुजारी तूं।
कद तक झल्लेंगा तू, एहदी ख्वारी तूं॥
लड़न ते मैरन दी, करलै तैयारी तूं॥
पगड़ी संभाल जट्टा, पगड़ी संभाल ओए।

इस गीत में 'जट्टा' शब्द से किसानमात्र अभिप्रेत है।

Scanned by CamScanner

न ठहर सका।

फ्रांस के विश्व विख्यात सन्त एवं विद्वान् रोम्यां रोलां ने स्वरचित रामकृष्ण परमहंस की जीवनी में १९०५ में बङ्गाल में हुए विद्रोह के लिए आर्यसमाज को ज़िम्मेदार ठहराते हुए लिखा है कि "चाहे दयानन्द चाहते थे या नहीं, उनकी आर्यसमाज ने १९०५ में बङ्गाल में हुई क्रान्ति के लिए मैदान तैयार कर दिया था।" (Whether he wished it or not, Swami Dayananda's Arya Samaj prepared the way for the revolt in Bengal in 1905).

रोम्यां रोलां के कथन की पुष्टि करते हुए A. De. Reincourt ने लिखा है—

"There is little doubt today that the great revolt in Bengal in 1905 was largely the direct result of the religious nationalism of Arya Samaj. Dayananda's organisation was certainly the first nucleus of political nationalism."

—The Soul of India, P. 136

अर्थात् अब इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बङ्गाल की १९०५ की बड़ी क्रान्ति बहुत हद तक आर्यसमाज के धार्मिक राष्ट्रवाद का प्रत्यक्ष परिणाम थी। दयानन्द का सङ्गठन निश्चय ही राजनैतिक राष्ट्रीयता का बीजरूप था।

सर मायकल ओड्वायर (Sir Michael O'Dwyer, who ordered the great infamous massacre of Jallianwala Bagh in Amritsar in 1919) ने लिखा था कि यद्यपि पञ्जाब की कुल आबादी में आर्यसमाजियों की संख्या पाँच प्रतिशत से अधिक नहीं है, १९०७ से आज तक राजद्रोह के कारण जेलों में बन्द कुल अपराधियों में आर्यसमाज के सदस्यों की संख्या बहुत अधिक है। उनमें सनातनधर्मी बहुत थोड़े हैं—

"It should be noted in all fairness to orthox Hindus that while the Arya Samajists do not form more than five percent of the total population of Panjab, an enormous population of the convicts of sedition from 1907 to the present day are members of the Arya Samaj."

सन् १९११ में जनसंख्या के कमिश्नर मिस्टर ब्लण्ट ने लिखा था—

"Dayananda was not merely a religious zealot and reformer, he was also a great patriot. It would be fair to say that with him religious reform was a mere means to national reform."

ऋषि दयानन्द ने रोग का उपचार करने से पहले उसका निदान करना

Scanned by CamScanner

आवश्यक समझा, क्योंकि '**कारणाभावात्कार्याभावः**'— कारण के न रहने पर कार्य का स्वतःअभाव हो जाता है। पराधीन होने से पहले हम स्वाधीन थे, यह निश्चित है। उन्होंने जाना—''विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद आदि हैं तथा जब भाई-भाई आपस में लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पञ्च बन बैठता है।'' ''आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया, सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी यह रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयङ्कर राक्षस कभी छूटेगा, वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाके दुःखसागर में डुबा मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन, गोत्रहत्यारे, स्वदेशविनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्यलोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाए।''

''परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा और अलग-अलग व्यवहार का छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिए जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं, उसी का मान्य करना भद्रपुरुषों का काम है।''

दयानन्द के शब्दों में ''जब तक एक मत, एक हानि-लाभ, एक सुख-दुःख न मानें तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है। जब भूगोल में एक मत था, उसी में सबकी निष्ठा थी और एक-दूसरे का सुख-दुःख, हानि-लाभ आपस में समान समझते थे तभी तक सुख था। एक दिन श्री मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने स्वामीजी से पूछा—भगवन्! भारत का पूर्णहित कब होगा? यहाँ राष्ट्रीय एकता कब होगी?'' स्वामीजी ने उत्तर दिया—''एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाये बिना भारत का पूर्णहित होना कठिन है। सब उन्नतियों का केन्द्र स्थान ऐक्य है। जहाँ भाषा, भाव और भावना में एकता आ जाए, वहाँ सागर की भाँति सारे सुख एक-एक करके प्रवेश करने लगते हैं। मैं चाहता हूँ कि देश के राजे-महाराजे अपने शासन में सुधार और संशोधन करें। अपने-अपने राज्य में धर्म, भाषा और भावों में एकता करें। फिर भारत में आप-ही-आप सुधार हो जाएगा।''

इसमें सन्देह नहीं कि ऋषि दयानन्द ने पाखण्डों और परस्पर विरोधी मान्यताओं एवं अन्धविश्वासों का खण्डन इसलिए किया था कि इनके रहते हुए परस्पर एकता, मेल-मिलाप या सद्भाव न रहकर ईर्ष्या, द्वेष, मतभेद और लड़ाई-झगड़े बढ़ते हैं। हमारी जिन कमज़ोरियों से विदेशियों

Scanned by CamScanner

ने लाभ उठाया है, उन्हें दूर करना ही दयानन्द के खण्डन का उद्देश्य था। दयानन्द ने सबसे अधिक खण्डन मूर्त्तिपूजा का किया है, क्योंकि उनके अनुसार वही देश के अनर्थों की जड़ है। उन्होंने लिखा है कि यदि ऐसे पाखण्ड न चलते तो देश की ऐसी दुर्दशा न होती, परन्तु इस प्रकरण में मूर्त्तिपूजा से होनेवाली जिन १६ हानियों का उल्लेख किया है उनमें से अधिकतर का सम्बन्ध उसके कारण देश को होनेवाली हानियों से है। वे लिखते हैं—"नाना प्रकार की विरुद्धस्वरूप-नाम-चरित्रयुक्त मूर्त्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्धमत में चलकर आपस में फूट बढ़ाके देश का नाश करते हैं। जो मूर्त्ति के भरोसे शत्रु की पराजय और अपनी विजय मानके बैठे रहते हैं, उनका पराजय होकर राज्य, स्वातन्त्र्य और सुख शत्रुओं के अधीन हो जाता है। क्यों पत्थर पूजकर सत्यानाश को प्राप्त हुए? देखो! जितनी मूर्त्तियाँ पूजी हैं, उनके स्थान पर शूरवीरों की पूजा करते तो कितनी रक्षा होती?" ब्रिटिश सरकार को इस सबमें दयानन्द द्वारा जनता को अपने (ब्रिटिश सरकार के) विरुद्ध भड़काये जाने की ज़बरदस्त गन्ध आई, विशेषत: इन वाक्यों में—

"जब संवत् १९१४ के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर-मूर्त्तियाँ अंग्रेज़ों ने उड़ा दी थीं, तब मूर्त्ति कहाँ गई थीं। प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता दिखाई और लड़े, शत्रुओं को मारा, परन्तु मूर्त्ति एक मक्खी की टाङ्ग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता, तो उनके धुर्रे उड़ा देता और वे भागते-फिरते। भला! यह तो कहो कि जिसका रक्षक मार खाये उसके शरणागत क्यों न पीटे जाएँ?"

व्यापार व उद्योग धन्धे—दयानन्द ने अपने समय में देश की आर्थिक स्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया। विचार ही नहीं किया, अपितु निश्चित योजना भी बनाई और तदर्थ विदेशों से पत्र-व्यवहार भी किया। दैवयोग से उन्हें अपनी योजना को कार्यान्वित करने का अवसर नहीं मिला। स्वामी दयानन्द इस बात को बड़ी पीड़ा के साथ अनुभव करते थे कि विदेशी माल की खपत से देश की कितनी हानि हो रही है। सत्यार्थप्रकाश में उन्होंने लिखा—"जब परदेशी हमारे देश में व्यापार करें तो दारिद्र्य और दु:ख के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।"

आज से लगभग सत्तर वर्ष पूर्व महात्मा गांधी ने स्वदेशी के लिए आन्दोलन किया था, परन्तु उनका आन्दोलन उस समय स्वदेशी वस्त्रों या खादी तक सीमित था। स्वामी दयानन्द ने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के उद्देश्य से सब प्रकार की विदेशी वस्तुओं और रहन-सहन

Scanned by CamScanner

के बहिष्कार करने और स्वदेश में निर्मित वस्तुओं को अपनाने की प्रेरणा करते हुए उन्होंने बड़े मर्मभेदी शब्दों में कहा—"देखो! अपने देश में बने हुए जूतों को कार्यालय=आफ़िस और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं। इतने से ही समझ लेओ कि अंग्रेज़ अपने देश के जूतों का भी जितना मान करते हैं, उतना अन्य देशस्थ मनुष्य का भी नहीं करते।"

"देखो! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों को हो गये और आज तक ये लोग वैसे ही मोटे कपड़े आदि पहनते हैं, जैसेकि स्वदेश में पहनते थे, परन्तु उन्होंने अपना चलन नहीं छोड़ा। तुममें से बहुत-से लोगों ने उनकी नक़ल कर ली। अनुकरण करना बुद्धिमानों का काम नहीं। इससे तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं। वे अपने देशवालों को व्यापार में सहायता देते हैं, इत्यादि गुणों और अच्छे कर्मों से उनकी उन्नति होती है।"

"अन्य देशस्थ मनुष्यों का भी उतना मान नहीं करते जितना अपने देश के जूते का" लिखनेवाले के मन में कितनी पीड़ा रही होगी अपने देश की दीन-हीन दशा देखकर और कितनी तीव्र घृणा रही होगी उसके हृदय में विदेशी शासन और विदेशी वस्तुओं के प्रयोग के प्रति और ऐसे विद्रोही मन में कितनी उत्कट अभिलाषा होगी उस शासन से मुक्त होने की!

छलेसर निवासी ठाकुर ऊधोसिंह को विदेशी वेशभूषा में देखकर स्वामीजी ने बड़े मार्मिक शब्दों में कहा था—"क्या तुम विदेशी कपड़ों से बने इस नये वेश से विभूषित होकर अपने पिताजी से अधिक सुसंस्कृत हो गये हो?"

—श्रीमद्दयानन्द प्रकाश

स्वामी दयानन्द से प्रेरणा पाकर बड़ी संख्या में आर्यसमाजी स्वदेशी वस्त्रों का प्रयोग करने लगे थे। लाहौर की आर्यसमाज के सभासदों द्वारा अंग्रेज़ी वस्त्रों का प्रयोग न करके स्वदेशी वस्त्रों का प्रयोग करने के निर्णय का समाचार वहाँ से प्रकाशित होनेवाले Statesman के १४ अगस्त १८७९ के अङ्क में इस प्रकार छपा था—

"भारत की वर्त्तमान अवस्था तेज़ी से बढ़ती हुई दरिद्रता की है। देश की इस अवस्था में अपने उद्योग-धन्धों की पुन: बहाली का प्रश्न जितना महत्त्वपूर्ण और रोचक है, उतना अन्य कोई सामाजिक प्रश्न नहीं है, अत: विद्वान् मनीषी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित लाहौर आर्यसमाज के सदस्यों के इस कदम का सन्तोष के साथ अभिनन्दन उन सब लोगों को करना चाहिए जिनके हृदय में देश का हित है। आर्यसमाज के भवन के

Scanned by CamScanner

परिसर में हुई एक बैठक में उन्होंने अंग्रेज़ी कपड़ों के प्रयोग से विरत होने का निश्चय किया है। आगे से वे केवल भारत में बने कपड़ों का ही आग्रह रक्खेंगे। यदि वे अपने वचन का पालन कर सके और अन्य लोग उनके उदाहरण का अनुकरण कर पाये तो एक महान् लक्ष्य पूरा हो जाएगा। भारतीय बाज़ार में मांचेस्टर के प्रभाव का जवाब देने का यही एक उपाय है।''

ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना अंपने हितार्थ इसलिए की थी कि वह भारत में निर्मित वस्त्र, मसाले आदि का निर्यात स्वयं उन देशों को करे जहाँ उनकी माँग थी, परन्तु १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वहाँ हुई औद्योगिक क्रान्ति के कारण वहाँ के उद्योगपतियों ने भारत में ब्रिटिश माल के आयात पर रोक लगाने की माँग की। अब उन्हें इङ्गलैण्ड में बने माल के लिए स्वयं अपने लिए भारतीय बाज़ार की आवश्यकता थी। इसके परिणामस्वरूप भारत का व्यापार ठप्प हो गया और यहाँ के कारीगर और मज़दूर बेकार हो गये। जिस ढाका की मलमल पर भारत गर्व करता था वह लुप्त हो गई। मशीन से बने कपड़े की तुलना में हाथ से बना कपड़ा महँगा पड़ता था। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में हाहाकार मच गया। भुखमरी के कारण होनेवाली मौतों से त्रस्त तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बैंटिंक को अपनी रिपोर्ट में लिखना पड़ा कि ''व्यापार-जगत् के इतिहास में कहीं भी और कभी भी इसकी मिसाल नहीं मिलेगी। भारत के कारीगरों (बुनकरों) और मज़दूरों के शवों की बिखरी हुई हड्डियों से यहाँ के मैदान सफ़ेद पड़ गये हैं।''

दयानन्द ने देखा कि यत्र-तत्र-सर्वत्र मांचेस्टर का राज्य है। हमारे ओढ़ने-पहनने में ही नहीं, बिस्तर की चादरों, कुरसी की गद्दियों, दरवाज़ों व खिड़कियों के परदों तक में मांचेस्टर छाया है। खान-पान, बोल-चाल, रहन-सहन, रस्म-रिवाज़ सभी कुछ विदेशी रंग में रंगा है। उस समय की वस्तुस्थिति का यथायथ चित्र हम यहाँ डे फ़ो (De Foe) के शब्दों में प्रस्तुत कर रहे हैं—

"Natives from the most part wear the Manchester cotton fabrics, children play in the bazar with English and French toys, write on foreign paper, the sick take foreign medicines, native ladies wear foreign imitation pearls manufactured in Paris, the sportsman of position shoots with the rifle purchased in the Strand and the English speaking native official has begun to adorn himself with stockings from Praiseley and leicester and patent leather

Scanned by CamScanner

boots and shoes made by machinary made in Berminghum."

ये परिस्थितियाँ थीं जिनमें ऋषि दयानन्द ने विद्रोही स्वर में प्रत्येक विदेशी वस्तु के बहिष्कार पर बल देने के लिए सत्यार्थप्रकाश में लिखा था—

"क्या बिना देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में राज्य वा व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है? जब स्वदेशी लोग तो स्वदेश ही में व्यवहार व राज्य करते और बाहर से आकर परदेशी भी स्वदेश में व्यवहार व राज्य करें तो सिवाय दारिद्र्य और दु:ख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।"

इतना ही नहीं, अपने देशवासियों को विदेशों के साथ व्यापार करने की प्रेरणा करते हुए उन्होंने लिखा—

"जो मनुष्य देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में जाने-आने में शङ्का नहीं करते, वे देश-देशान्तर के अनेकविध मनुष्यों के समागम और रीति-रिवाज़ देखने, अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय तथा शूरवीर होने लगते हैं।"

विदेशियों के भारत में व्यापार करने और भारतीयों के विदेशों में व्यापार न करने को वह देश की दरिद्रता का मूल कारण समझते थे। इसका उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए किसी समय श्रीमती सरोजिनी नायडू ने अपनी पुस्तक 'अंग्रेज़ी राज्य में भारत का आर्थिक शोषण' में लिखा था—"इङ्गलैण्ड में रुई पैदा नहीं होती। इसलिए वह भारत से रुई ख़रीदता है और मांचेस्टर में उसका वस्त्र बनाकर भारत में बेचता है। एक रुपये में बिकनेवाले वस्त्र में लगी रुई के दो पैसे भारत को मिलते हैं और ६२ पैसे इङ्गलैण्ड में रह जाते हैं। (उन दिनों एक रुपये में ६४ पैसे होते थे)। इसलिए स्वामी दयानन्द भारत के आर्थिक विकास, व्यापक दृष्टिकोण तथा सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए विदेशों से व्यापार करना तथा इस निमित्त उनसे सन्धियाँ करना आवश्यक समझते थे। उन दिनों विदेश यात्रा से धर्मभ्रष्ट हो जाने के फलस्वरूप स्थापित वर्जनाओं का प्रत्याख्यान करते हुए पूना में दिये गये एक प्रवचन में उन्होंने कहा था—"देशाटन में अड़ङ्गा लगाना मूर्खता है। इतना ही नहीं, अपने हाथों देश का सर्वनाश करना है।" देश-देशान्तर व्यापार को दृष्टि में रखकर ही उन्होंने व्यापारियों को प्रत्येक देश की भाषा सीखने का निर्देश किया (संस्कृतवाक्यप्रबोध)। उन्होंने अपने वेदभाष्य में यत्र-तत्र-अनेकत्र व्यापारियों के अन्तर्देशीय स्वरूप का निर्धारण करते हुए राजा को व्यापारियों के लिए अपेक्षित सुविधाएँ प्रदान

Scanned by CamScanner

करने का निर्देश किया है। **'व्यापारे वसति लक्ष्मी'** इस नीतिवचन का अनुसरण करते हुए स्वामीजी ने अपने यजुर्भाष्य (१६।४२) में लिखा है—''धन की कामना करनेवाले नौकादि यानों में शिक्षित मल्लाह आदि को रखकर समुद्रादि के इस पार—उस पार आ-जाकर देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में व्यवहार से धन की उन्नति करें।''

शिल्प, उद्योग तथा आयात-निर्यात का व्यापार में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में शिक्षानीति के अन्तर्गत राजधर्म से सम्बन्धित 'धनुर्वेद' के पश्चात् अथर्ववेद के उपवेद 'अर्थवेद' का उल्लेख हुआ है। अर्थवेद ही शिल्पशास्त्र है। स्वामीजी ने उसे छह वर्ष के भीतर पढ़कर तार, विमान, भूगर्भादि विद्याओं को जानने का उपदेश किया है। वह उपदेश करके ही नहीं रह गये, शिल्पोन्नति हेतु तकनीकी प्रशिक्षण के लिए उन्होंने भारतीय युवकों को विदेश भेजने की व्यावहारिक योजना भी बनाई। उनकी जीवनी के प्रामाणिक लेखक देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने इस प्रसङ्ग में स्वामीजी की मानसिक दशा का वर्णन करते हुए लिखा है—''जब वह (दयानन्द) देखता था कि भारत के शिल्पजीवी लोग बड़ी दुर्दशा में दिन काटते हैं, भारत की कारीगरी दिन-प्रतिदिन लुप्त होती जा रही है और दूसरी ओर विदेशी शिल्पी नये-नये आविष्कार कर रहे हैं, हिन्दुओं के घर विदेशी वस्तुओं से सजे हुए और प्रतिष्ठा के पात्र समझे जाते हैं, तब वह सर्वत्यागी संन्यासी महात्मा हिन्दुओं पर आक्षेपमात्र करके ही चुप नहीं रह जाता है, बल्कि एक शोकातुर मनुष्य के समान उसे अत्यन्त दु:ख होता था।''

—देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय : महर्षि दयानन्द का जीवनचरित

स्वामीजी कला-कौशल के प्रशिक्षण के हेतु प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे (पत्र तथा विज्ञापन भाग १, पृष्ठ ४५०)। वे यह भी चाहते थे कि कुछ युवकों को कला-कौशल सीखने के लिए जर्मनी भेज दिया जाए (पृष्ठ ३७९)। इस निमित्त उनका जर्मनी के प्रोफ़ेसर जी० वाईज़ से पत्राचार भी हुआ। प्रोफ़ेसर वाईज़ ने २७ जून १८८० से १७ अक्तूबर १८८० तक ६ पत्र स्वामीजी को लिखे। उन्होंने भारतीय युवकों को जर्मनी में पोलिटिकल इकोनोमी, स्टेनोग्राफ़ी, बढ़ईगीरी, लोहे का काम, कपड़े की रंगाई, घड़ीसाज़ी आदि का प्रशिक्षण देने के लिए सहमति प्रदान कर दी थी। (वही भाग ३, पृष्ठ ८७, ९४, ९५-९८), परन्तु, क्योंकि स्वामीजी अपने अन्तरतम से विशुद्धत: जनतान्त्रिक पद्धति के पक्षधर थे, उन्होंने इस योजना को ला० मूलराज आदि सहयोगियों की

Scanned by CamScanner

समिति में विचारार्थ प्रस्तुत कर दिया, जहाँ अन्ततः उसे अस्वीकार कर दिया गया (वही, भाग १, पृष्ठ ४०३)। जब इसकी सूचना प्रोफ़ेसर वाईज़ को दी गई तो उसने १० अक्तूबर १८८० को लिखे गये अपने पत्र में उक्त समिति के निर्णय की उपेक्षा करके युवकों को जर्मनी भेजने का आग्रह करते हुए लिखा कि आप कमेटी की परवाह न करें। बहुमत सदा ही बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय नहीं करता, चाहे उसमें का प्रत्येक सदस्य चतुर तथा तर्कपूर्ण ही क्यों न हो। यह कहावत भी है कि कई सारे रसोइये भोजन को बिगाड़ देते हैं। थोड़े दिन बाद कमेटी अपनी राय बदल भी सकती है और वह आप और मुझसे सहमत भी हो सकती है। जो धन उच्च शिक्षा पर व्यय किया जाता है, वह फेंका हुआ नहीं माना जाएगा, अतः आप अपने छात्रों को मेरे पास भेजने में सङ्कोच न करें। हम उन्हें आपकी शर्तों पर ही ले लेंगे (वेदवाणी वर्ष ४१, अङ्क ४, फ़र्वरी १९८९, पृष्ठ ८०), परन्तु न तो स्वामीजी ने अपने जनतान्त्रिक निर्णय को अन्यथा किया और न समिति ने अपना निर्णय बदला। परिणामतः भारतीय युवक तकनीकी शिक्षा के लिए जर्मनी न जा सके।

पं० श्री युधिष्ठिरजी मीमांसक का विचार था कि कमेटी के सदस्य हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, मुंशी बख़्तावरसिंह, मुंशी इन्द्रमणि आदि ने अंग्रेज़ों के धन के प्रलोभनवश और लाला मूलराज ने अंग्रेज़ों के एजेण्ट होने से सरकारी दबाव के कारण स्वामीजी की योजना को विफल करने के लिए ऐसा निर्णय दिया। यहाँ दो बातें विचारणीय हैं—प्रथम तो स्वामीजी मनु के इस सिद्धान्त को माननेवाले थे कि एक अकेला वेदों को जाननेवाला, द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे अर्थात् जो निर्णय करे वही मानने योग्य है.....(मनु० १२।१३), और दूसरे वे इस चण्डाल चौकड़ी से भली प्रकार परिचित थे, ऐसी दशा में उन्होंने स्वतःस्फूर्त तथा प्रोफ़ेसर वाईज़ जैसे सुविज्ञ, निःस्वार्थ और उस विषय में आप्त पुरुष द्वारा अनुमोदित योजना का परित्याग क्यों कर दिया? इस घटनाक्रम का अन्वेषण अपेक्षित है। यह भी ज्ञातव्य है कि इस योजना के असफल हो जाने पर भी स्वामीजी की प्रेरणा से शीघ्र ही एक शिल्प विद्यालय की स्थापना की गई थी, यह १६ मार्च १८८३ को आर्यसमाज लाहौर के मन्त्री जवाहरसिंह द्वारा विज्ञापित इस समाचार से स्पष्ट है—

"येह एक परम हर्ष की बात है कि हमारी समाज से एक शिल्पादि विद्यालय खुलनेवाला है। येह हमारे देश में पहली बात होगी। बिजली, रेल, तार आदि सब कारीगरी सिखाई जाएगी। सब सामान विलायत से

Scanned by CamScanner

मँगवाया जाएगा। पुन: यह बात आपपर विदित होगी कि यहाँ पर लड़कियों का सकूल है। एक बरस व्यतीत हो गया। तीस लड़की पढ़ती हैं। सकूल समाज के मन्दर के अन्दर है। हिन्दी में पढ़ाई होती है अर दस्ताने, जुराब अर गुलबन्द बुनती हैं। अर कसीदा काढ़ती हैं। प्रीक्षापूर्वक इनाम भी दिये जाते हैं।''

आश्चर्य की बात है कि अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी स्वामीजी ने दानापुर के ठाकुरदास नामक घड़ीसाज़ से घड़ी की कला सीखी थी (Radhey Shyam : Contribution of Arya Samaj in the making of modern India, Page 218).

अंग्रेज़ मूलत: व्यापारी थे। अपना व्यापार बढ़ाने के उद्देश्य से ही उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रूप में भारत में प्रवेश किया था। उन्होंने देखा कि दयानन्द का स्वदेशी का आन्दोलन उनके व्यापार को चौपट कर देगा। यह मांचेस्टर से जुड़े हज़ारों लोगों के पेट पर लात मारना होगा। ब्रिटिश सरकार की दृष्टि से इससे बड़ा राजद्रोह और क्या हो सकता था? और इसके प्रेरक, प्रवर्त्तक एवं प्रसारक दयानन्द और उसके अनुयायी आर्यसमाजियों से बढ़कर उसके शत्रु कौन हो सकते थे? इसलिए उनके दमन के लिए भी उन्होंने सब-कुछ किया।

युद्ध में विजयी हों

हे परमेश्वर! हमारे अस्त्र-शस्त्र अर्थात् तोप, बन्दूक, तलवार, धनुष-बाण आदि तथा युद्ध में काम आनेवाली सम्पूर्ण सामग्री शत्रु के आक्रमण को थामने के लिए सदा तय्यार बर तय्यार रहे और हमारी सेना प्रतिक्षण सन्नद्ध-बद्ध व सावधान रहे। हे प्रभु! आपके अनुग्रह से हम सदा विजयी हों, अन्यायकारी से हम कभी पराजित न हों। उनके कपटाचरण कभी सफल न हों। विश्वभर में हमारी सेनाओं की वीरगाथाओं का गान हो।

—आर्याभिविनय २।२२

जब तक संसार में दुष्टता बनी रहेगी तब तक दुष्टों का संहार और सज्जनों की रक्षा के लिए क्षत्रिय वर्ग अर्थात् सेनाओं की आवश्यकता बनी रहेगी। आदर्श राष्ट्र में दुष्टता के दमन के लिए ब्राह्मण का उपदेश काम देगा। वह कहेगा—ऐसा मत करो, अन्यथा मैं जान दे दूँगा। परन्तु क्षत्रिय या सैनिक कहेगा—अब ऐसा न करना। करोगे तो मैं तुम्हें मार डालूँगा। निर्बल की अहिंसा उसकी कमज़ोरी की घोषणा समझी जाती है। जीने के लिए शक्तिसञ्चय आवश्यक है। सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में वास्तव में दयानन्द ने राज्य-व्यवस्था तथा युद्ध कौशल की शिक्षा दी है

Scanned by CamScanner

और विषय का समापन यजुर्वेद के इन शब्दों के साथ किया है—"वयं प्रजापते: प्रजा अभूम"—हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और वह हमारा राजा है। वह कृपा करके अपनी सृष्टि में हमको राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्यन्याय की प्रवृत्ति करावे।" विश्वविजय की कामना और अपने शिष्यों को उसकी प्राप्त्यर्थ सर्वशक्ति परमेश्वर से प्रार्थना की प्रेरणा करनेवाले दयानन्द को कोई राजद्रोही समझ बैठे, यह सहज सम्भाव्य है।

परमेश्वर से सहयोग की माँग

हे परमात्मन्! आपके साथ मिलकर=आपकी सहायता से ही हम दुष्ट शत्रुओं को जीतें। हमारी सेना की आप रक्षा करें, जिससे हम किसी युद्ध में क्षीण होकर पराजय को प्राप्त न हों। जिनको आपका साथ होता है उनकी सर्वत्र विजय होती है। हमारे लिए चक्रवर्त्ती राज्य प्राप्त कराएँ, अर्थात् आपकी कृपाकटाक्ष से हमारा राज्य और सम्पदा सदा वृद्धि को प्राप्त हों।

—आर्याभिविनय १।४३

वेद के इन मन्त्रों से युद्ध का औचित्य सिद्ध नहीं होता, परन्तु जैसाकि हम पहले लिख आये हैं, जब तक मनुष्य का स्वभाव नहीं बदलेगा तब तक किसी-न-किसी रूप में युद्ध की सम्भावना बनी रहेगी। यजुर्वेद २०।२५ के अनुसार आदर्श राज्य में ज्ञान (बुद्धि) तथा शक्ति दोनों का होना आवश्यक है। राज्य से वञ्चित पाण्डवों ने बातचीत के द्वारा राज्य में अपना भाग लेना चाहा और दुर्योधन से वार्त्ता के लिए उस समय के 'वदतां श्रेष्ठतम:' बातचीत में सर्वाधिक कुशल श्रीकृष्ण को अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा, परन्तु दुर्योधन ने '**सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव**' कहकर बातचीत को निरर्थक कर दिया, फलत: कुरुक्षेत्र के मैदान में निर्णायक युद्ध हुआ। वहाँ गीता में बुद्धि तथा शक्ति का प्रतिनिधित्व क्रमश: कृष्ण और अर्जुन ने किया है। गीता का आरम्भ तब होता है जब अर्जुन '**न योत्स्ये**' कहकर बैठ जाता है और समापन तब होता है जब अर्जुन '**करिष्ये वचनं तव**' (जैसा कहोगे वैसा ही करूँगा) कहता है। अर्जुन को लड़ने के लिए तैयार करने में श्रीकृष्ण को लगभग एक दर्जन बार 'इसलिए लड़' कहना पड़ा। निष्कर्षत: गीताकार ने कहा—

यत्र योगेश्वर: कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर:।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

जहाँ योगेश्वर कृष्ण है और धनुर्धारी अर्जुन है, वहाँ लक्ष्मी, विजय, ऐश्वर्य और अटल नीति है, यह मेरी सम्मति है।

Scanned by CamScanner

आर्य और दस्यु

हे सबको यथायोग्य जाननेवाले परमेश्वर! आप (आर्यान्) विद्या, धर्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त आर्यों को जानो (ये च दस्यवः) और जो नास्तिक, डाकू, चोर, लम्पट, विश्वासघाती, मूर्ख, हिंसादि दोषयुक्त, उत्तम कर्मों में विघ्नकारक, स्वार्थी, वेदविद्याविरोधी, अनार्य मनुष्य (बर्हिष्मते) सर्वोपकारक यज्ञ के ध्वंसक हैं, उन सब दुष्टों को आप (रन्धय) जड़मूल से नष्ट कर दीजिए। और (शासदव्रतान्) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि, धर्मानुष्ठान-व्रतरहित, वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियों को शीघ्र दण्डित करो जिससे वे शिक्षित होकर शिष्ट हों अथवा हमारे नियन्त्रण में रहें। (शाकी) आप मनुष्यों को शक्ति देनेवाले और शुभ कर्मों में प्रेरित करनेवाले हैं। आप हमारे दुष्कर्मों से निरोधक हो। हम भी आपकी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्मों की कामना करें और आप उन्हें पूरी करें।''

—आर्याभिविनय १।१४

गोस्वामी तुलसीदास की एक चौपाई है, जिसमें कहा है—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नर अवसि नरक अधिकारी॥

मध्यप्रदेश सरकार ने सन् १९४२ ईसवी में रामचरितमानस की इस चौपाई के पढ़ने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। अंग्रेज़ों का राज्य था और प्रजा दुःखी थी। उन्होंने समझा कि यह चौपाई अंग्रेज़ सरकार के प्रति जनता में घृणा फैलाने के लिए लिखी गई है, यद्यपि जब तुलसीदास ने ये पङ्क्तियाँ लिखीं थीं तब अंग्रेज़ों का इस देश में पदार्पण भी न हुआ था, पर 'चोर की दाढ़ी में तिनका'। वेदों का प्रादुर्भाव सृष्टि के आरम्भ में आज से लगभग दो अरब वर्ष पूर्व हुआ था, परन्तु वेदों में 'आर्य' के साथ 'दस्यु' शब्द देखकर उसे अंग्रेज़ों के लिए प्रयुक्त हुआ समझ उन्हें नरक का अधिकारी कहा गया मान लिया गया। उस समय आर्यसमाज ने इस चौपाई का प्रकरण के अनुसार अर्थ करके भ्रान्ति को दूर कर प्रतिबन्ध को हटवाया।

पाश्चात्य तथा तदनुयायी भारतीय विद्वानों ने ऋग्वेद में आये 'आर्य' और 'दस्यु' शब्दों के जानबूझकर दो भिन्न-भिन्न जातियों के बोधक होने की कल्पना की। उनका कहना है कि आर्यलोग भारत के मूल निवासी नहीं थे। किसी समय उन्होंने इस देश पर आक्रमण किया था। आर्यों की बुद्धि प्रखर थी और शस्त्रास्त्र भी अच्छे थे। इसलिए उन्होंने यहाँ के आदिवासियों पर विजय प्राप्त करके उन्हें अपना दास बना लिया। उन्होंने यह कल्पना यहाँ के लोगों को आपस में लड़ाने और एक-दूसरे में घृणा

Scanned by CamScanner

पैदा करके ईसाइयत का प्रसार करने के लिए की थी।

वास्तव में वेद में आये आर्य और दास या दस्यु शब्द जातिवाचक न होकर गुणवाचक हैं। आर्याभिविनय में 'दस्यु या दास' शब्द को 'आर्य' के विपरीत अर्थ में प्रयुक्त होने से अंग्रेज़ों ने उसे अपने लिए गाली समझकर आर्यों को राजद्रोही घोषित किया। आर्यसमाज उनके विदेशी शासक होने से निस्सन्देह उनका विरोधी था।

Scanned by CamScanner

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

पूर्वाश्रम में प्रिंसिपल लक्ष्मीदत्त दीक्षित के नाम से प्रख्यात स्वामी विद्यानन्दजी सरस्वती वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ विद्वान्, गम्भीर चिन्तक, यशस्वी लेखक तथा कुशल वक्ता हैं। वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र, प्राचीन इतिहास तथा आधुनिक समस्याओं पर संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी में लगभग पचास मौलिक तथा प्रामाणिक ग्रन्थों की रचना की है। देश के मूर्धन्य विद्वानों तथा नेताओं ने स्वामीजी के ग्रन्थों की प्रशंसा की है तथा केन्द्रीय व प्रादेशिक सरकारों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं ने पुरस्कृत किया है।

लगभग ५० वर्ष तक स्वामीजी ने शिक्षा क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है जिनमें बीस वर्ष तक आप डिग्री तथा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलिजों के प्रिंसिपल तथा कुछ समय तक गुरुकुल विश्वविद्यालय की उच्चस्तरीय समितियों के सदस्य रहे हैं।

सन् १९७२ में भारत के राष्ट्रपति ने स्वामी विद्यानन्दजी को उनकी योग्यता तथा शिक्षा के क्षेत्र में दीर्घकालीन सराहनीय सेवाओं के उपलक्ष्य में पञ्जाब विश्वविद्यालय के सेनेट के प्रतिष्ठित सदस्य के रूप में मनोनीत किया।

स्वामी विद्यानन्दजी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तथा आर्य प्रादेशिक सभा पञ्जाब के सबसे पुराने सदस्य (oldest living member) हैं। महात्मा नारायण स्वामीजी के समय में स्वामीजी ने पाँच वर्ष तक सभा के उपमन्त्री के पद पर कार्य किया, जब पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति उपप्रधान तथा पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय मन्त्री थे।

आर्यसमाज के इतिहास में हुए तीनों सत्याग्रहों (हैदराबाद, सिन्ध तथा पञ्जाब) में भाग लेने का श्रेय केवल स्वामी विद्यानन्दजी को प्राप्त हुआ। फिर भी, स्वामीजी ही अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने उसके उपलक्ष्य में मिलनेवाली पेंशन और सुविधाओं को लेना स्वीकार नहीं किया।

सन् १९६०-६१ में आर्य प्रादेशिक सभा पञ्जाब को सार्वदेशिक सभा के अन्तर्गत लाने और दिल्ली की सब आर्यसमाजों को एक सूत्र में पिरोकर आर्य केन्द्रीय सभा की स्थापना करने का श्रेय भी स्वामीजी को ही है।

सन् १९६५-६६ में पञ्जाब के विभाजन के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिए पञ्जाब की दोनों सभाओं ने संयुक्त रूप से उसका मन्त्री स्वामीजी को ही बनाया था।

भारतीय शुद्धिसभा, दयानन्द सालवेशन मिशन, दयानन्द दलितोद्धार मण्डल, दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मलेन, आर्यसमाज शिक्षा परिषद्, आर्य विद्यापरिषद् पञ्जाब आदि; पञ्जाब, हरियाणा और दिल्ली की अनेक धार्मिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक संस्थाओं की गतिविधियों में पिछले ५५ वर्षों से स्वामी विद्यानन्दजी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

Scanned by CamScanner

स्वामी विद्यानन्दजी सरस्वती की रचनाएँ

हिन्दी में

१. भूमिका भास्कर—भाग १
२. भूमिका भास्कर—भाग २
३. संस्कार भास्कर
४. सत्यार्थ भास्कर—भाग १
५. सत्यार्थ भास्कर—भाग २
६. अनादि तत्त्व दर्शन
७. वेद मीमांसा
८. अध्यात्म मीमांसा (ईशोपनिषद् रहस्य)
९. तत्त्वमसि अथवा अद्वैत मीमांसा
१०. प्रस्थानत्रयी और अद्वैतवाद
११. आर्यों का आदि देश व उनकी सभ्यता
१२. सृष्टि विज्ञान और विकासवाद
१३. द्वैतासिद्धि
१४. चत्वारो वै वेदा:
१५. वेदार्थ भूमिका—हिन्दी
१६. वेदार्थ भूमिका—संस्कृत
१७. त्यागवाद
१८. स्वराज्य दर्शन
१९. राजधर्म
२०. खट्टी मीठी यादें
२१. आर्यों का आदि देश (१२ भाषाओं में)
२२. स्वामी विवेकानन्द के विचार
२३. मूलगीता में श्रीकृष्णार्जुन संवाद
२४. जन्म-जीवन-मृत्यु
२५. वाल्मीकि रामायण—
भ्रान्तियाँ और निराकरण
२६. शङ्कराचार्य कृत परापूजा का भाष्य
२७. गौ की गुहार
२८. आर्यसिद्धान्त-विमर्श
२९. भारत भाग्यविधाता दयानन्द
३०. आर्यध्वज परिचय
३१. ऋषि दयानन्द—मेरी दृष्टि में
३२. अद्वैत-मत-खण्डन
३३. बाग़ी दयानन्द

अंग्रेज़ी में

1. The Brahmasutra
2. Vedic Concept of God
3. Theory of Reality
4. Ishopanishada study in Ethics of Metaphysics
5. Anotamy of Vedanta
6. Political Science
7. The Age of Sanskara
8. The Riddle of Life and Death
9. Aryavarta the Original Habitat of the Aryans
10. Original Home of the Aryans
11. Dayananda Architect of Modern India
12. On the Vedas
13. The Gospel of Vivekanand
14. Rise, Awake and Stop-Not
15. The revolt

उर्दू में

१. भोले बाबा का हुलिया
२. धर्म-शिक्षा

Scanned by CamScanner

स्वामी श्री विद्यानन्द जी सरस्वती सन् १९८८ का श्री घूडमल आर्य साहित्य पुरस्कार ग्रहण करते हुए। (आर्यसमाज हिण्डौन सिटी के इस पुरस्कार से १९८३ से १९९५ तक तेरह आर्य विद्वान् सम्मानित किये गये हैं।)

Scanned by CamScanner